UNIVERSAL LIBRARY
OU_180319
UNIVERSAL LIBRARY

श्री

रामदास

(गोपन्ना)

रचयिता :

लाजपति पिंगल

एक भक्त-गाथा

मूल्य दस आने

सन् १९३९ ई.

रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी मन्दिर प्रयाग

एक अहिन्दी-प्रान्त-वासी श्रीलाजपति पिंगल का 'रामदास' नामक पद्य-ग्रंथ पढ़कर मुझे बहुत ही हर्ष हुआ है। ग्रंथकर्ता ने कवि का हृदय पाया है, जो ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर मोती की तरह प्रकाशित है। भावों को सुन्दरता से व्यक्त करने का प्रयत्न किया गया है। भाषा की त्रुटियाँ क्षम्य हैं।

रामनरेश त्रिपाठी

हिन्दी मंदिर, प्रयाग
30.8.38

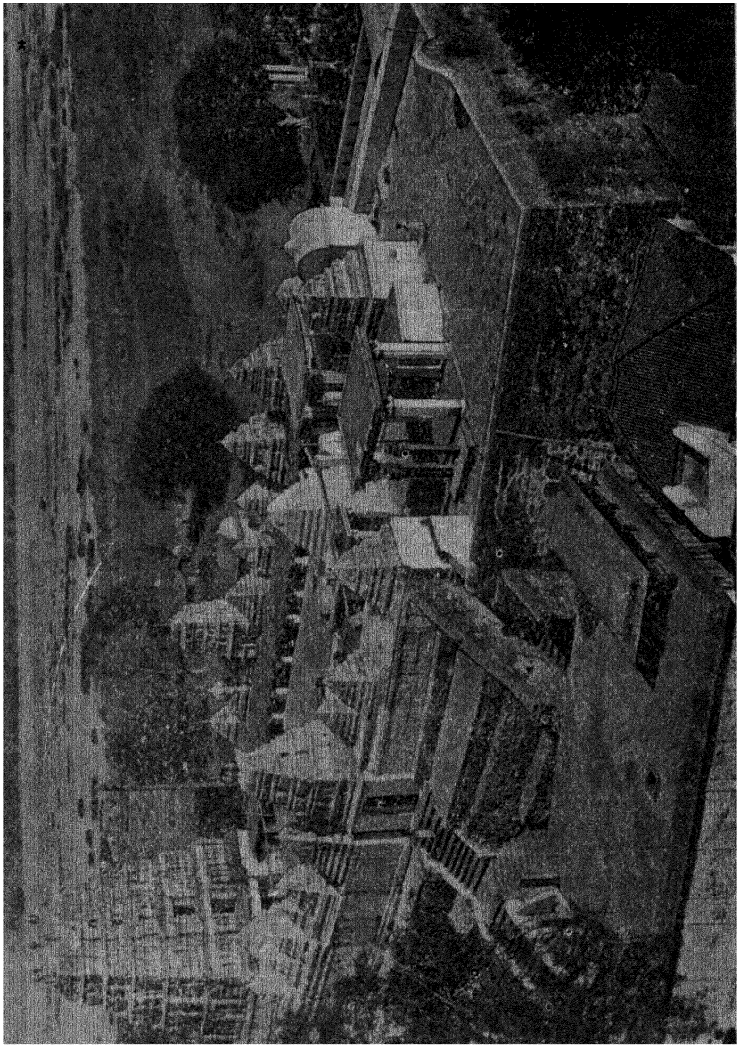

भद्राचल-देवालय

भद्राचल - गोपन्ना

भद्राचल एक बड़ा नगर है, आन्ध्रदेश में यह गोदावरी नदी के किनारे बसा हुआ है। यह एक बड़ा क्षेत्र भी है। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी इस नगर के विराजमान भगवान हैं। दूर २ के लोग यहाँ हमेशा आया जाया करते हैं। भगवान की महिमा वर्णनातीत है। यहाँ तक कि हैदराबाद के 'नवाब' भी हरसाल कल्याण के समय शाही-पुरस्कार भेजते हैं। यह प्रथा कल परसों की तो नहीं किन्तु प्राचीन काल की है। इसी में भक्त-शिरोमणि "गोपन्ना" नाम के एक भक्त पैदा हुए थे। आज कल के विस्तृत प्राकार, गगन-चुम्बी देवालय के दिव्य शिखर, कीमती जवाहिरात, सब उन्हीं के कीर्ति-स्तम्भ हैं। यह 'गोपन्ना' हिन्दी-संसार के लिये नया है। इनकी कथा हिन्दी-साहित्य-संसार में व्याप्त अभी नहीं हुई है। अब मैं इस अवकाश पर, उस अनोखे असमान तथा अनन्त कीर्ति-सम्पन्न भक्त की कथा आपके कर-कमलों में रख देना चाहता हूँ। इसके पहिले संक्षेप में क्षेत्र की महिमा तथा क्षेत्र की सतत-प्रवाहित गोदावरी की गुरुतम महत्ता का ज्ञान रखना आवश्यक है।

किसी समय सकलपुराणकथा श्रवणकुतूहलायत्तचित्त शौनकादि मुनीन्द्र पौराणिक श्रेष्ठ सूत जी को निहार कर यों प्रार्थना करने लगे। "महात्मा! पुण्य-पूरित एक कथा की सुगन्धित-मधु पिलाकर हमारी भगवत्-गाथा-विषयक पिपासु का प्रत्यर्पण कृपया करें। भोले सूत जी यों फूल गये —"मुनींद्र! भूलोक के गौतमी निकटस्थ

श्री राम-क्षेत्र में भगवान श्रीमन्नारायण, आपद-ग्रस्त जनों की आर्त्तव-आपद ओंको पराभूत करने के निमित्त अवतार लिये हैं" ये श्रीराम चन्द्र यहाँ क्यों आये ?

प्राचीन काल में सर्वपर्वताधिपति 'मेरु' ने आपनी पत्नी 'मेनका' के साथ ब्रह्मदेव जी की तपस्या की थी। घोर तपस्या से तृप्त होकर चतुर्मुखने दर्शन दिया था—"वर माँग लो"। यद्यपि किसी वर-प्राप्ति से अपनी पवित्र तपस्या को कलङ्कित करना नहीं चाहता था तथापि भगवान के आज्ञानुसार 'मेरु' ने कहा—"भगवान ! श्री राम पाद सेवा धुरंधर श्री राम-ध्यान-परायणायत्तचित्त और कुल-दीपक की तरनी मिल गयी तो हम अपने को भवसागर के उस पार वा सर्ग-प्राप्त समझेंगे। दयालू भगवान क्या नहीं देते।

'मेनका' के गर्भ से 'भद्र' नाम का लडका पैदा हुआ। प्रस्तुत भद्राचल उसीका निवास-स्थान है। वही भद्र, भद्रगिरि, भद्राचल, भद्राद्रि नामों से विख्यात है। उन्हींके विशाल तथा कर्कश देह पर कोमल श्रीरामचन्द्र विराजमान हैं। इसी के सम्बन्ध में पुराणोंकी एक कथा कही जाती है। पूर्वकाल में पित्राज्ञा-परिपालनार्थ सीता-लक्ष्मण समेत जब श्री रामचंद्र दण्डकारण्य में थे; भ्रमित हुए श्रीराम एक पाषाण-शिला पर आसीन हुए थे। शरीर धीरे २ ढीला हुआ था। सन्तोष भी प्राप्त हुआ। उन्होंने आश्रय-दाता जड़ पदार्थ की सम्बोधना करके वर देने की इच्छा प्रगट की थी। सर्वशक्ति-सम्पन्न के साक्षात्कार में कुछ अधिक नहीं पूछा जासका "हमेशा इसी तरह का आनन्द प्राप्त किया करें"।

कथायें भिन्न हैं, तथापि फल एक ही है---'भद्र', 'मेनका' के गर्भ से पैदा हुआ; 'भद्र' ने तपस्या की थी, अतः रामचन्द्र परिवार के साथ वहीं रहने लगे। नील कमलों पद्मों, शतशः सूर्यों की उपमा देता और रोज 'भद्र' भजना करता। एक समय श्री रामचन्द्र जी ने कहा था "भद्र! तुम्हारा नामोच्चारण और दर्शन, दीनों केलिये भद्र-प्रद है....." यों भद्राचल क्षेत्र की महिमा पूरी है। क्या इतना ही? आस पास में क्या कोई विचित्र दृश्य हैं? क्यों नहीं, संक्षेप में कहूँगा।

इस भद्राचल से दो कोस की दूरी पर आग्नेय दिक में, तथा गोदावरी के रेतीले गर्भ में 'शेषेश्वर' और 'उष्ण-कुण्ड' नाम के दो स्थान हैं। पूर्वकाल में राक्षस नागलोकांतरर्गत होकर अशान्ति कारक हुए थे। ब्रह्मा के आदेशानुसार शेषने गोदावरी के प्रस्तुत तट पर महेश्वर की तपस्या की थी और एक शूल भोले-नाथ जी से प्राप्त किया था। कहते हैं कि उस बिल से जोकि आने जाने की राह थी· भोगवती नाम्नी नदी ऊपर आयी थी और गोदावरी में मिल गयी थी। यों वह स्थान 'रसातल-गंगा-संगम' व 'शेषेश्वर' नाम से प्रख्यात है। तपस्या के समय 'शेष' का जो अग्नि-कुण्ड था और जिस में पीछे से गोदावरी का जल आगया था, वह आज 'उष्ण-कुण्ड के नाम से प्रसिद्धि है। यद्यपि 'उष्ण-कुण्ड' की कथा कल्पित तथा असम्भव सी मालूम होती है तथापि वही वहाँ का वृत्तान्त है। हमेशा इस स्थान पर कितने ही जाया आया करते हैं।

अब हम कथा की पूँछ पकड़ें। ऊपर की घटनायें होगयी थीं, परन्तु प्रस्तुत भद्राचल-नगर तथा वहाँ का विशाल देवालय नहीं निकले थे। केवल नरोत्तम श्री रामचन्द्रजी से भूषित भद्र पर्वत की सृष्टि हो गयी थी। भद्राचल के समीप एक गाँव में 'तम्मन दम्मक्का' नाम से एक बड़ी भगितिनी पैदा हुई थी। उनको एक बार श्री रामचन्द्रजीने स्वप्न में साक्षात होकर कहा था—"मैं यहाँ के एक पहाड पर हूँ जिसका नाम भद्रगिरि है। थोड़े ही दिनों की अवधि में 'गोपन्ना' नाम का एक बड़ा भक्त यहाँ आवेगा और नित्य पूजन का प्रबन्ध कर देगा। तब तक यह सब तुम्हीं को करना है। यहाँ की प्रजा को इस विषय पर सचेत करो। मुझे हमेशा तुम अपने साथ समझो। तुम्हारा जन्म सार्थक हो जायेगा...."। भक्तिनी फूल गयी थी। आनन्द का पारावार न था। इस अचिन्तित, अलभ्य तथा अमूल्य साक्षात्कार पर वह रीझ गयी थी। उसकी कल्पना मात्र से रोंगटे उठ खड़े हो जाते थे न भूख होती और न प्यास लगती। नर जन्म का मोह या अज्ञान जो शरीर से छिपे २ सटा रहता है पूरा २ अर्क-सिंह को देखते ही दुम दबाकर भागनेवाले तिमिर-करियों की तरह तितर-बितर—तीन तेरह हो गया था। भगवान का साक्षात्कार स्वप्न में भी क्यों न हो—क्या मामूली बात है! इतने में स्वप्न टूटा। और पौ फटी। जगत की माया-मयी लीला पर आदित्य की अज्ञान-भेदक लालिमा बरसने लगी—गुलाल की पिचकारियाँ छूटने लगीं। सिद्धों की आठों सिद्धियाँ, ऋषियों की मानसिक-ज्योति मनो-निष्ठा या तपशक्ति, रसिकों के नव रस, कवियों की अविच्छिन्न एकाग्रता—सरसता, लम्पटों की लोलुपता, वैज्ञानिकों की विवेचना—

ओह! कितने ही उस लालिमा में बिम्बित थे—गर्भित थे।—किशोरावस्था के किशोर की तरह, भू-देवी माता के अङ्क में डोलनेवाले बिहान के भानु ही की इतनी महिमा!

सबेरे २ मैके जाने वाली स्त्री की तरह, या सुदूरवर्त्ती पति से मिलनेवाली पतिदेवता की तरह, फूले अङ्क न समाती हुई, 'दम्मक्का', पुरवासियों को साथ लिये अद्रि का आरोहण आशु करने लगी। आनन्द भी कैसी चीज़ है। देखते २ छोटी पर पहुँच गयी। लता-पुष्प-पत्तों में फँसे हुए नीले-भोले भगवान की प्रोक्षणा करके तदादि नित्य पूजा करने लगी।

अल्प काल में आच्छादन—तृणादि निर्मित देव-गृह—गरीबों का चौहरा बन गया। भगवान की प्रतिष्ठापना हो गयी। पुरवासी आने जाने लगे। 'दम्मक्का' काम हो तो पङ्खहीन विहंग की तरह धड़ाम से नीचे गिर पड़ती, काम पूरा होते ही लङ्कागामी हनुमान की तरह एक दम उड़कर शिखर पर पहुँच जाती। उत्साह का प्रोत्साहन है। उस समय वहाँ 'भद्ररेड्डि' नाम से एक सज्जन था। आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता की गंगाधारा उमड़ कर ऊपर पहुँच जाती थी। जब गंगा ऋषि-पुंगव अत्रि मुनि को खोजती हुई जंगल में ही बही थी तब इस उमड़ाव में क्या विशेषता है! बेरोकटोक भगवान की पूजा—सेवा होने लगी। चारों तरफ़ से चन्दे भरने लगे। भव-वासना-मुक्ता, अविचल-मनोनिष्ठा, असमान-भक्तिसम्पन्ना 'तम्मन-दम्मक्का' मुक्त-हस्तों से, भगवान की सेवा में मन जोड़कर, भक्ति में डूबकर, ध्यान में तल्लीन होकर नित्य

कैंकर्यादियों में बाहरी आर्थिक सहायता का सदुपयोग करने लगी। यों चारों तरफ हरिहाली-आनन्द आमोद-प्रमोद उछल-कूद— कितने ही रूपों में परिणत होकर वहाँ उपस्थित होती थी। कहाँ का अगम्य अरण्य और कहाँ ये पूजा-पाठ, लता-भवन, वाहरी! लीला अब हम 'गोपन्ना' की अभिरुच्योत्पादक सरल गाथा में आ ही गये। केवल मधु-पान आसन्न है।

'गोपन्ना' के पिताजी का नाम 'लिंगन्ना' है जो 'शाह' के दरबार में नामवर थे। 'शाह' के मन्त्रि-द्वय की सहायता से 'गोपन्ना' को तहसीलदारी की नौकरी मिल गयी थी। 'भद्राचल' के तहशील दार 'गोपन्ना'ने सरकार के वसूलों में से छः लाख रुपये ख़र्च कर एक बड़ा देवालय बनवाया। अतः ग़बन के क़ुसूर से बारह साल जैल में रहा। बाद श्री रामचन्द्रजी का साक्षात्कार आजन्म-सिद्ध 'तानीषाजी' को जब प्राप्त हुआ था और जब कि प्रभु ने छवों लाख रुपये स्वयम वाफ़िस किया था, तब 'गोपन्ना' को जैल से रिहाई मिली। अनन्तर 'भद्राचल' के देवालय में ही आप गोपन्ना जी भगवान में ऐक्य होगये।

ऐसे महान पुरुष की कथा का ब्यौरा, पुस्तक पूरा २ पढ़ कर आप ही समझ सकते हैं।

आप का

लाजपति पिंगल

कृति - समर्पण

मेरे पूज्य गुरुवर तथा बीहार के निवासी
श्री पण्डित रामानन्द शर्म्मा जी की सेवा में

दो ॥ नमस्कार शतशः इन्हें, ग्रहण करें गुरु-श्रेष्ठ।
शिष्य-कोटि का 'लाजपति', धरता जिन्हें यथेष्ट ॥

मैंने पाया आपसे, विद्या का अभ्यास।
परिचय भी साहित्य का, हिन्दी-पद-विन्यास ॥

कृति अर्पण करना सदा, मेरा है आनन्द।
फिर भी शंका हृदय में, एक उठी है मन्द ॥

लौटाया जाता वही, पाया जो सानन्द।
नवीनता इस में कहाँ, इससे क्या आनन्द ॥

जो हो इससे क्या करूँ, और न बनता आर्य।
आशिश दें विद्यार्थि को, 'शुभ प्रद होंगे कार्य' ॥

आप का
विनम्र अनुचर
लाजपति पिंगल

निवेदन

पूज्य पण्डितों की सेवा में :—

आन्ध्रदेश में, तेलुगू रामदास के कीर्तनों का प्रभाव व प्रचार, अकथनीय है। ऐसी 'भजना' एक भी नहीं जहाँ कि इन कीर्तनों के गाये बिना काम चलाया जा सके। ये कबीर दास जी के शिष्य थे। इसलिये यदि मैं कहूँ कि "ज्यों कबीर उत्तर के त्यों गोपना आन्ध्र के" इस में अतिशयोक्ति कुछ भी नहीं। ऐसे महान कीर्तनों पर मेरी रचना आधारित है। प्रातः स्मरणीय तथा पूज्य पण्डित श्री रामनरेशत्रिपाठी जी के कथनानुसार मैं एक अहिन्दी प्रान्त का तथा श्री पूज्य पं. रामानन्द शर्मा जी की सम्मति के अनुसार विभिन्न भाषा-भाषी हूँ। तिसपर भी यह मेरा प्रथम प्रयत्न है जिसका उद्देश एक बड़े भक्त की कथा को आपके कर कमलों में रखना ही है। आपके सम्मुख 'राम दास (गोपन्ना)' समुपस्थित करके अपने साहस वा धृष्टता और लड़कपन वा चपलता केलिये क्षमा माँगता हूँ। इसे क्षीर-नीर-न्याय से ग्रहण करें।

पाठकों के प्रति :—

मुद्रणालय के सभी तैलंगी हैं। इस कारण से छापे में कुछ अशुद्धियाँ निकल आयी हैं। यथा साध्य सभों को चुन २ कर एक पट्टी के रूप में मैंने दे दिया है। इसलिये पढ़ने के पहिले उस सूची के अनुसार शब्दों के विरूप को अनुरूप बना कर बाद पढ़ाई शुरू करें।

प्रत्येक बातें

रामदास के अंशों को देख-सुन कर जिन हितैषियोंने मुझे प्रोत्साहन दिया है, मैं हृदय से उनका आभारी हूँ।

आपका

लाजपति पिंगल

हर्षोद्गार !

श्रीरामानंद शर्मा 'प्रेमयोगी' 'विद्या-विलास' पुनास दरभंगा [बिहार]

भाई लाजपति की काव्य-कृति 'रामदास के कुछ अंशोंको मैंने छपने के पहले ही सुना था। उसी समय आपके हिन्दी-प्रेम, आपके साहस और आपकी लगनपर मैं विस्मय विमुग्ध हो उठा था। आपने यह रचना पहले 'व्रजभाषा' में की थी। हमारा अनुरोध मानकर आपने इसे खड़ी बोली में सजाया।

हिन्दी संसार में 'रामदास' का प्रकाशन एक अपूर्व घटना है राष्ट्रभाषा हिन्दी का भविष्य अनतिदूर में ही कैसा होगा, 'रामदास' आलोकस्तंभका काम करेगा। इसी तरह विभिन्नभाषा-भाषी प्रांतोंसे राष्ट्रभाषाका भांडार भरा जाने लगेगा और अत्यल्प समय में सर्वांग पूर्ण होकर यह भाषा संस्कृत और अंगरेजी के पदपर आरूढ़ हो जायगी।

हिन्दी से अन्य भाषा में और अन्य भाषा से हिन्दी में अनुवाद-कार्य तेजीसे हो रहा है। पर अन्य भाषा-भाषी होकर हिंदी में मौलिक रचना—सो भी काव्याराधना—इसका श्रेय आंध्र प्रदेश और उसके सपूत श्री लाजपति को ही है।

हिन्दी संसार श्री लाजपत का कृतज्ञ रहेगा। हमारी आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि 'रामदास' का अदम्य साहसी युवक कवि अपनी लगन में उत्तरोत्तर धावित होता जाएगा और अपनी काव्य कृतियों के निर्मल प्रवाह में हमें सराबोर करता रहेगा।

'रामदास' के गुण-दोषोंकी आलोचना करना हिन्दी साहित्य के सहृदय समालोचकोंका काम है। उन्हें इसमें अनेक अक्षम्य उपेक्षा और अवहेलनाओंसे साक्षात्कार होगा। साथ ही उनको तेलुगू भाषी इस दुस्साहसी युवक कविकी प्रतिभा, लगन और हिन्दी प्रेमका दर्शन हुए विना भी नहीं रहेगा और अनेक स्थलोंपर उनकी आलोचक दृष्टि रससिक्त हुए विना भी नहीं रहेगी और वे याद दिए विना भी नहीं रह सकेंगे।

"निश्चल बिनिर्मल नील जलपर सुनहरी चादर बिछी॥
आह्वान सध्याका हुआ यों शांति भी सहसा बिछी॥
आदित्यकी सित कांति माला सुखद सागर में पड़ी।
पोशाक चमकीली सजाकर आशु रजनी आ पड़ी॥

जो कवि ऐसा रस-प्रवाह बहा सकता है उससे उज्ज्वल रचनाओंकी आशा करना कभी भी वृथा नहीं जाएगा।

कवि, हिन्दी-प्रेमी, चि. लाजपत! तुम मेरे अत्यंत ही प्रिय रहे हो। तुमने मेरी आशा-कल्पना-लताकी जड़में सिंचाई शुरू कर दी है। मैं तुम्हारी प्रतिभा पर मुग्ध हूँ। मेरे अंतर से अजस्र रूप में तुम्हारे प्रति शुभकामना निकलती रहती है----'तुम राष्ट्र भाषा के मृत्युंजय कवि बनो!'

पुणे,
२०—६—'३९

श्री रामानंद शर्मा.

वेद-काव्य-स्मृति तीर्थ, धर्माचार्य, साहित्यविशारद, विद्यानिधि,
विद्यारत्नादिपदवीभूषित, वीरशैवगुरुकुलाध्यक्ष शैवभारती भवन
संस्थापक, "विभूति" पत्रिका (तेलुगु) संपादक और
विविधलिपिभाषाप्राचीनेतिहासप्रवीण

पंडित चि. म. वीरभद्रशर्मा तैलंग जी का

अभिमत

हरि ॥ मैं ने अतीव प्रमोदसे "पिंगल" कवीश्वरकी कृती
पढ़कर समीक्षा भी किया यह बन पड़ी है तो सती ?
जिस देशमें गुज़रा "गुपन्ना" राम भक्तशिरोमणी
उस आन्ध्र में ही जनि लिया कवि "लाजपति" भी अग्रणी ॥

है "रामदास" प्रसिद्धि अपने प्रान्तमें चिरकालसे
पर सकल-हिन्दुस्थान परिचित है नहीं इस बातसे।
यह "लाजपति पिंगल-"कृती बतलायगी उस बात को
जो सरल सुन्दर है जँचेगी पढ़ लिया तो आप को ॥

है बल किसी हिन्दी-महाशय को "तिलंगी" में रचे ?
कविता बनाकर इस तरह, अपवाद से तो वे बचे ?
इस "लाजपति पिंगल" महोदय से हमें अभिमान है
जो आन्ध्र होकर हिन्द-भाषा में दिया विज्ञान है ॥

सिकिन्दराबाद,
१०-७-१९३९ ई.

चि. म. वीरभद्र शर्मा तैलंग.

पहिला - भाग

गीत

जय् जय् जय् श्री गणपति की जै।
जै जन गन अभिनायक की जै।
जै त्रिपुरेश पँचानन की जै ॥ जै ॥

जै सुर-हरिजन- पालक की जै।
जै जग-आनँद दाता की जै ॥ जै ॥

शा ॥ **श्री** लक्ष्मीपति-धाम के सरिस ही, भद्राद्रि के धाम हैं
शोभायुक्त सुरम्यता छिड़कते, भद्राद्रि के धाम हैं।
योंही वन्य सुप्रान्त हैं मृग भरे, शोभा बढ़ाते वहाँ
फूलों की, फल-पुष्प-जाल-मधु की आश्लिष्टता है जहाँ

मन्दा॥ बंदन्वारे अतिशय हरे, सोहते हैं सुखाले
दर्शन् से ही मन- कुसुम भी, फूलते हैं सुखाले।
तीनों दिक् में, विमल जल से, वक्रगोदावरी है
मानों धन्वी रघुपति वहाँ, चाप खींचे हुए हैं॥

दो ॥ एक सड़क सीधी वहाँ, एक पंथ के लोग।
नाम अहरनिश राम का, प्रभी पुरुष का योग॥

हरि॥ जब कालचक्र लगा बदलने, बादशा गद्दी चढ़ा
अक्कन्न मादन ने प्रशान्ती राज्य में दी खुद बढ़ा।
गोपन्न भाँजा जन्म लेकर थे सबों को लालते
माँ-बाप अपने पुत्रका हँस-मुख हमेशा देखते॥

दो ॥ गोत्र आत्रयस विमल अति, कुल-भूषण गोपन्न
कंचर्लान्ध्राचार्यकुल, जनमे दास संपन्न।
नाम पिता का लिंगना, 'शाशा' के दरबार
एक बार थे नामवर, सदा चढ़े अम्बार॥

शा ॥ डील डौल उन्नत भाल जिनका, था बताता सरलता
सन्देह रहित विशाल मानस, आप सीधा खेलता।
मुख-चन्द्र हाससुचन्द्रिका को, था हमेशा छीटता
झंडा फ़राता चिन्ह भोला भाल पर था सोहता ॥

हरि ॥ अति रम्य सुन्दर लिंगना की, देह थी आकारत:
सिक्का उन्हीं का था चलाता, कालचक्र स्वभावत: ।
पर समय सब का एक सा नहिं, लोक में चलता कभी
अक्कन्न मादन का बजा है, लोग कहते अब सभी ॥

दो ॥ नाम करण 'गोपन' किया, लिंगन ने कर यत्न।
करन-बेध उपवीत सब, क्रम से हुए सयत्न ॥

हरि ॥ अध्ययन करने योग्य गोपन, जब बना आश्रम गया
अति अल्प अवसर में कमाया, जो श्रमी को भी नया।
माता पिता निजपुत्र के सत–चिन्तवन से थे सुखी
आमोद लहरों में सदा ही शान्त बहते थे सुखी ॥

भद्राद्रि में श्रीराम भजना एक अवसर थी हुई
सब लोग आनँद अंबुधी में तैरते थे, तबहुई–
भक्ताग्रगामी गोपना की, ग्राम अपद का थिती
सन्तप्त वन के राम की जब, कान में आयी थिती ॥

जग से, (बदा है कर्म्म जिनका), कुशल नहिं भोगे बिना,
सब लोग कर्म्म-कुचक्र में पड़, आप बहजाते छिना।
सब वेद बुध पण्डित बताते हैं परात्पर है वही
जो कर्म्म के कलुषित कुमण्डल से सुरक्षित हो सही॥

श्रीरामचन्द्र घने विपिन में शाप वश अस्थिर हुए
ढाढस बँधाकर सेवता में राम के पद रत हुए।
इस तरह गोपन भक्ति वश हो, भाव-सोता में बहा
दर्शक-समूह-सदस्य का प्रति-एक दुख-नद में बहा॥

जब राम की भजना सबों की आज भी सुख-प्रद रही
उस समय के परितृप्त सुख की स्तुति नहीं जाती कही।
पवनज महाबलि रावणानुज से बड़ी सेवा हुई
यदि जन्म मेरा तब हुआ था, जान, सच सेवा हुई॥

पुष्पस्थ-मधु के सम तुम्हारा नाम, मुनि भृंग सम कहूँ
अति विमल सुमन सुशान्ति की मधु भक्त मन पोष्टा कहूँ।
नरदेह धारणकर दमाया दैत्य कुल की धाक को
माया-विचार असाध्य कहकर यति चले तज लोक को॥

धन धाम धात्री धर्म्म-पत्नी पुत्र को दे दान में
निज व्रत निभाया अन्त तक, हरिचन्द्रने सच-आन में।
प्रतिभा हुई थी प्राप्त तुम से थे मृणाल निमित्त ही
इस भक्त को भी ज्ञान वैसा, आप दें सुख-प्रद सही॥

मद मोह मात्सर्यादि षड्गुण लोक में हैं नाचते
संसार के अनभिज्ञ अंधे हैं नशे में नाचते।
पर दूर रह सकता हमेशा लौलगावे जो सदा
ज्यों कबीर कमाल रखते रोशनी फैला सदा॥

शा॥ विश्वामित्र मुनींद्र के यजन की शोभा बढ़ाई घनी
दैत्यों की घन मण्डली छितरता, आभा दिखाई घनी।
वालों का मद मात के कपि पती का मान राखा घना
माता का हृद्खेद दूर करके भूभार नासा घना॥

दो॥ भव-निधि तरने तरनि हैं, भक्त-पाल खलहारि।
तत्पर-विचार-लक्ष्य जो, सत-मुनि-मन-कामारि॥

हरि॥ इस समय सज कर भस्म से निज देह, कंबल ओढ़के
थे श्मश्रुभूरे नाभि-चुम्बक, विमल आदर ओढ़के।
लटका कटोरा पीठ पर, तन थाम, लकड़ी पर टिके
आवृत विचंचल जडित केशों को हटाते मुनि झुके॥

मन्दा॥ "आहो नीला मन-मुकुर को साधु संगों में धोया
धोकर मैंने पतित-पति का, बिम्ब उसमें जमाया।
देखा चाहो, सतत थिर है, आप ही के मनों में
मेरा-तेरा यह सब तजो" साधु बोले प्रभा में"

दो ॥ एक बार आकाश से, भक्तों से एक बार ।
वेद तत्व का सार तब, कहा साधु ने वार ॥

मन्दा ॥ दौड़ाया चौंदिक नज़र को साद्योपान्त देखा
जाना बाना भगत जन का, साधु वृन्दों की रेखा ।
गोपन्ना के निकट-तर हो, राम की मूर्त्ति देखी
बोले फौरन् 'भगत तुम में,' ज्योति देखी अलेखी ॥

दो ॥ पूछा कबीर दासने, 'बोलो नाम कुमार' ।
बोला गोपन मोद से, 'गोपन शिष्य दुलार ॥

हरि ॥ संसार के सब जीव-धारी, कर्म्म-वश हो जनमते
जो कर्म्म-रूपी गहन को तुम, चीर तरना चाहते ।
तो राम-नाम-कुठार हाथों धार व्याकुलता तजो
बन जायेगा जंगल बगीचा, मोह तज प्रभु को भजो ॥

दो ॥ दिल की बात बयान कर, कबीर ने ली राह ।
"गोपन तो होनहार है, इनकी भक्ति अथाह ॥

हरि ॥ श्रीरामचंद्र पतीत-पावन, भक्त जिनको हेरते
नको दयामय छान जग में, खेल अपना खेलते ।
विपरीत है लीला प्रभू की, लोक के आलोक में
यद्यपि सकारण सकल जग में, योग्य जन की दृष्टि में ॥

प्रमाणिका ॥ "राम-नाम गइये राम-धाम पाइये
मोह-मेघ छेदिये सत्य को सँभालिये ।
सन्त सेव कीजिये दिव्य-द्रव्य लीजिये
'स्वीय-अन्य' छोडिये, एक लक्ष्य ऐंचिये ॥

दो ॥ एक पार्श्व गोपन्न था, कबीर बोले "शिष्य !
कहना तुम क्या चाहते, अवश्य बोलो शिष्य।"
निकट गया गोपन तभी किया दंडवत शीघ्र
कहा "पूज्य! निज शिष्य को, बोलें मन्तर अग्र" ॥

बिंबछन्द ॥ "सतत मन में समाओ, निरत उनमें कहाओ ।
हृदय-पथ पै जमाओ, पतित-पति को नवाओ ॥
अवध-पुर के निवासी, भक्त-मन के प्रकाशी।
अमित सुख जान की के, अमिय शरणागतों के ॥
तत् पुरुष राम ही है, अनत उनसा नहीं है।
अहरनिश राम बोलो अमित सुख मध्य डोलो ॥

दो ॥ "मन्त्र एक "श्रीराम" यह, जग-प्रसिद्ध प्रख्यात ।
'तारक मन्तर' नाम से, जग में है विख्यात ॥
अपनी मदद सँसार में, आप करें सन्तोष।
उनके काम सँभालते, रामचन्द्र सह-तोष" ॥
सुनते सुनते गोपना परवश हो सानन्द ।
धरती पर झक से गिरा कहकर 'भक्तानन्द' ॥

हरि॥ गोपन्न वास्तव में बड़ा ही भक्त सबसे लोक में
कहकर फिराया साधुने निज कर बदन पै, मोद में।
कर-स्पर्श से उठ बैठ गोपन चरण धार कबीर के
बोला "महात्मा ज्ञान मारग आप कृपया दे सकें॥

दो॥ बात हुई थोडे समय, कबिराने ली राह।
गोपनने गुरु-चरण छू पकड़ी घर की राह॥

हरि॥ अक्कन्न मादन नाम के दो मन्त्रि 'हैदरबाद' में
थे, "शाह उनकी बात सुनते," कथन यह हर बदन में
गोपन्नने सोचा कि जाऊँ देखने दरबार में
"यदि नौकरी मुझको मिली तो, बचगया संसार में"॥

सन्तोष-जनित-स्वभाव यद्यपि कटु रहा तोभी खुशी
झक से उठे फौरन चले हरि-नाम ले अपनी खुशी।
खुद मन्त्रि मामा से मिला, दोनों चले दरबार मे
गोपन्न ने नवकर दिखाई नम्रता दरबार में॥

"जयजीव" सुनकर, खुश हुए दे नृपति आसन मोद से
आसीन हो कर मन्त्रि दोनों, आप अपने स्थन से-
कहने लगे गोपन्न का निज-हाल आप नवाब से
"है भक्त पर भोजन नहीं है, बात इतनी आप से"॥

उस समय के वे शाह अतिही नम्र हृदयी थे बड़े
उन सचिव की जो राय होती अमल करते थे अड़े !
सुनकर 'भदादी' नाम उनसे आपने माना तभी
'भद्राद्रि' की तहसीलदारी गोपना को दी तभी ॥

दो ॥ कहा शाहने "गोपना, आप पूज्य हैं सत्य।
पुन्य क्षेत्र 'भदरादरी', सार्थक जन्म अनित्य" ॥
गोपन खुश हो सिर झुका बाहर हुआ सयत्न।
ध्यान लगाया दासने राम पदों में रत्न ॥

गजल ॥ "देखिये गोदावरी वह तट सजा सियनाथ से ॥
धरम पत्नी अनुज को संग ले विराजे मोद से।
समय हाथों आ गया है, मन मिलाने रामसे ॥ देखिये
चरण कमलों सिर नवाये, पवनतनय महा बली।
भद्ररेखा खींच कर चौंदिक बही गोदावरी ॥ देखिये
गुलमेहंदी मल्लिका मदयंति पुष्प महक रहे।
भिन्न फल पुष्पों से भरकर शोभते जंगल रहे ॥ देखिये
भद्रगिरि के अद्रि अम्बर चूमते क्यों रंग में।
स्वर्ग में श्रीराम नहिं यह झांक हँसने व्यंग में ॥ देखिये

हरि ॥ यों दूरे ही से वन्य-स्थल निज-स्थल बखाना दासने
उपरान्त नदि के विमल जल में तन न्हलाया दासने।
भव-भय भंयकरे, भस्म कारण, जान भय तज गोपना
प्रियदेव श्रीरघुराम के शुभ-चरण भव-तरणी बना —

सुन्दर सुवर्ण सुमोतियों से पूर्ण प्रहरी पार के
वेदांत-वेद्य पतीत-पावन पुण्य पुरुष अपार के।
अदृश्य मुनि-मन-दृश्य प्रभु के नित्य सुन्दर रूप को
नैनों में जोड़ा गोपनाने तृप्त करने तप्त को ॥

उस गांव के प्रभु सेवकों से कह सुनाया आपने
"'सरकार की तहसील सत्वर लो' कहा है शाहने।
यदि आप देने में करेंगे देर तो लाञ्छन मुझे
कृपया हमारी अरज लीजो आर्य-जन तब सुख मुझे" ॥

दो ॥ "दास भक्त है" कह सभी, देने लगे वसूल।
चित्र ! पूर्व देते न थे, लीला है अनुकूल ॥

हरि ॥ सरपट वसूल गुपत्न करने कर लगा, सर्वत्र ही
होकर जमा भण्डार में धन, ज्यों बढ़ा अनिमेष ही—
त्यों भक्त के मन में बढ़ी थी, भक्ति राम अनन्त की
यह ते किया "धन व्यय करूँ शुभ-शाल बनवा नाथ की ॥

चहुँदिशि जताया "भोज होगा" भक्त-गृह में विप्र को
सुन देश परदेशों से आये, विप्रवर सन्निकट को
द्विज भोज के हित जब रसोदन, था समीपस्थल खुशी
प्रभुने गिराया अग्नि में जन-सुअन को घर की खुशी ॥

'खाता रहे सोता रहे उनको जगाना दूष्य है'
योंही विचारा सत्यवतिने, क्या करूँ अनिवार्य है।

नव-मास-धारिणि मातृ-संकट धूर्त्त सम छिपता नहीं
अति उग्र हो सन्निहित दर्शक को रुलाता हर कहीं ॥

ज्यों संकटानल-मध्य-स्थित-नर को नहीं स्पृहता कहीं
त्यों दास-पत्नी को न सूझा, अन्य रोने से कहीं।
ज्यों द्वीप्य-नद निधि-मध्य रहकर सहज गति बहता सदा
अनजान पूराकर उठे सब, बाद फैली आपदा ॥

गोपन्न 'गोपी-नाथ' कहकर, 'लाल' कह माता तभी
भूदेवि की ली शरण दोनोंने न सोचा यह कभी।
"अब कौन मुझ को 'सत्य-अम्मा, कह खिलावेगा कभी
ये प्राण जायेंगे अभी, मैं देख नहिं सकती कभी ॥

मन्दा॥ "अन्तर्यामी मम-सुअन तो गेह की दिव्य-आभा
खोया मैंने निज नयन को, अग्नि में दिव्य-शोभा।
जाऊँ तेरे चरण-युग में अन्यथा मार्ग नाहीं
पाहो" बोला, निज कर कमा, दास को शान्ति नाहीं ॥

दो ॥ परख दास की भक्ति यों, नम्र जान निज दास।
पुत्र-दान दे खुश किया, जन को प्रभुने हाँस ॥

विद्युन्माली॥ जै जै श्री सीता के नाथो, जै जै श्रीराधा के माधो
जै दाता माता-नैनों के, जै त्राता माता-प्राणों के।
दासों के ही स्नेही माधौ, लीला तो टेढ़ी है माधौ
जै हो, पादों माथा नाऊँ, गोदी तेरी में ही आऊँ ॥

दो ॥ यों अनन्द कर प्रगट तब आप हुआ सम्पन्न ।
पत्नि पुत्र परिवार में, सुखी हुआ गोपन्न ॥

हरि ॥ "कोदण्ड राम पतीप-पावन, दीन-पोषक दिव्य हो !
हे ! भक्तवत्सल योगि सत्तम, जन्म-रहित अतीत हो !
मणि-मय सुवेष मनोज्ञ भाषी, दुरित भीकर दान्त हो !
मुनि-हृदय-दृश्य अखण्ड सुरपा, सर्वशक्त समर्थ हो !

माता-पिता मेरे तुम्हीं हो मित्र पोषक सर्वथा
श्रीराम ! दिव्य अनाम जग में, वेद कहते हैं यथा ।
सरसीरुहाक्ष सुपक्ष सर्वग शंभु-प्रिय सुखदा सदा
गोपन्न हृदयांतर निवासी दास के सर्वस सदा ॥

दो ॥ मुरली-लोल मुकुन्द अज, मुनि-मन-मानस हंस
वृन्दावन की चन्द्रिका, हंस-वंश-अवतंस ।
नमो नमो श्रीराम प्रभु दाशरथी सुख-कन्द
प्रभु महिमा से प्राप्त है फिर आश्रम का चन्द्र ॥

हरि ॥ छेलाख मुद्रायें खजाने में जमा ही थीं तदा
सम्मोद व्यय करने लगा, था शाह इससे ही जुदा ।
यह वित्त इनका तो नहीं पर सलिल सम बहने लगा
'श्रीराम मेरे, तो कमी क्या' सोच व्यय करने लगा ॥

दो ॥ 'विष्णु विभो तुम जिष्णु-नुत आदि मध्य गत अन्त' ।
कहकर पैसे खरचते गोपन उत्तम सन्त ॥

"अखिल जगों में एक तुम, शक्तिवंत भगवंत
प्रतिमन अन्तर्यामि हो, रूप-रहित अतिदांत।"
यों समाप्त कर पूजना, गोपन ने उपरान्त
रचकर सभा प्रजाणिकी कहा आदि से अन्त॥

हरि॥ "भगवान की इस सृष्टि में नहिं, ऊँचनीय विशेषता।
ज्यों नर बना है त्यों हुआ पशु एक सब की योग्यता।
अनभिज्ञ कहते पुरुष उत्तम, वर्ण आश्रम रीति से
है यह बडा ही ढ़ोंग सच तो, शास्त्र की हो रीति से॥

"अज्ञानतिमिरावृत्त-नर में, योग्यता जिन में नहीं
आरोप पशुता का करेंगे, मान्य पशु मानों नहीं।
भव-वासना-मद-मत्तमानव, वर्ण-धर्म्म बिसार के
स्वच्छन्द अपने को समुझता, मोह में संसार के॥

"किसका बिगाडा शान्त पशुने? बंद है उत्तर यहां
योंही अनेकानेक बातें, हैं उड़ाती दुम यहाँ।
पशु शंभु को प्रिय आलयों में पशु प्रदर्शन प्रथम है
यों जानिये भगवान को ही, सर्वजीव समान हैं॥

"जब न्यून पशु भी है नहीं तब, क्यों विभेद मनुष्य में
प्रत्येकतः भगवान लोकप के सुपूजा-पाठ में
मति पुरुष में हैं समुझने की सोचने की शक्तियाँ
जिस से बना जैसा, करे वह पूजने की रीतियाँ॥

"भगवान की भजना सबों की, असल में, अधिकार में
समयानुकूल समर्थ प्रभु का, नाम लो संसार में।
श्रीराम मन्त्र सदा सबों का, भवरुजौषद सुखद है
सत-पुरुष कलुषित काल कटुता से बचे, यह सत्य है॥

"अब आपसे है एक विनती, दास की परमार्थ की
श्री जानकी राघव अनुज की, पूजना हो सार्थ की।
आलय कहाँ इसकेलिये, हाँ, है कमी इतनी यहाँ
यदि हाथ देने आप उद्यत हों, बनाऊँ तो यहाँ"॥

कारीगरों को एक दिन कह-भेज यों कहने लगा
"भद्राद्रि श्री रघुराम का अति भद्र आलय होयगा।
उसमें सभी को जोड़ मानस, काम है करना तदा
पैसे जमा हैं कोश में, मैं खरचने उद्यत सदा॥

"प्राकार चैदिक द्वार-दर्शन हेतु छोड़ो मोद से
मध्यस्थ आलय, उन्नतासन पर विराजे दीप्ति से।
उत्सव मनाने देव-गृह अति रम्य शोभा से बना।
निज बुद्धि का उपयोग करते, झेलिये हर यन्त्रणा॥

"श्री राम, आगे अंजना-सुत, अनुज पश्चिम पार्श्व में
रिपु-दमन कैकय-पुत्र दोनों पार्श्व तत्पर ध्यान में।
सुग्रीव लङ्का-नाथ, अङ्गद ऋक्षपति ऋषि मुनि तथा
चहुँ पार्श्व, पुष्प समान कोमल राम मध्य रहें यथा॥

"निर्माण यों सब मूर्त्तियों का कर सजाओ स्थान को
पाने सुदर्शन स्वर्ग के भी, देव आवें स्थान को।"
यों सूचना पाकर गुपन्ना से लगे सब काम में
कुछ काल में ही राम-मन्दिर बन गया उस धाम में॥

मणि मोतियों के मंजु तोरण, घण्टियाँ हर द्वार पै
नित धूप-दीप प्रसाद अर्पण, नाथ को हर समय पै।
इसमें न कुत्रिमता कहीं है, सहज सुन्दर धौहरा
मुनि योगि संयम-निष्ठ के मन को प्रभाने ही हरा॥

गरुड-ध्वजा थी गगन-चुम्बित, स्वर्ण शिखर शिखान्त थे
बन्दी सुमागध सूत गण को, मात कर विख्यात थे
मृदु पुष्प परिमल से भरे वे वन बहुत ही रम्य थे
शुभ शान्त सौम्याकार धरकर, राम सीता संग थे॥

प्रति-नित्य प्रातः काल मुरली-गान का आचार है
फूँगी बजाता एक सज्जन, ताल देता एक है।
जिसकी जहाँ तक है सुसंगति, आप लेता मोद था
सर्वाङ्ग शोभा देव-गृह की लोभती है सर्वथा॥

दो॥ गर्भगृहप्राकार के, पूर्ण हुए शुभ रूप।
छवों लाख रुपये कभी खर्च हुए अनुरूप॥

हरि॥ अभिरूप देवल का बना जब पूर्ण, कैंकर्यादि भी
गोपन्ने क्रम से किया सब, देख विस्मित थे सभी।

सब रूपये यद्यपि नृपति के, नाम तक लेता नहीं
दिन रात रमना राम में ही रम्य था, स्पृहता नहीं ॥

दो ॥ एक रोज आलय चले, करने सम्मुख ध्यान।
भजना यों करने लगे, "रामचन्द्र असमान ॥

चौ ॥ "रामचन्द्र दिनकर-कुल-रामा, भक्त-हृदय-सुखकर शुभनामा।
परंधाम तुलसीदलधामा, बसो भक्त-मन-सखा-सुदामा ॥
सूर धीर सुर-ईश दयालू, कपट रहित प्रणमामि कृपालू।
सीता-मृदु-मुख-पङ्कज-हंसा, सीय-राम रघुकुल-अवतंसा ॥
विमत-दूष सज्जन के पोषा, समर-भयंकर यों श्रुति शेषा।
मंजुल वेष भूष अति सुन्दर, रामदास रमता सुख सिन्धुर ॥
नीरज-नेत्र कञ्ज सम गात्रा, भक्त मित्र प्रभु भवरुजमात्रा।
अज पवित्र सुन्दर अमरत्रा, कुजन शत्रु सज्जन शुभ मित्रा ॥
भूसुर-कल्प-वृक्ष मृदु-पक्षा, निजरूपाक्ष शतृ के शिक्षा।
रामदास हृदयांतरवासी, तुलसी-दल-वनमाल-सुवासी ॥

हरि॥ गोपन्न का कैंकर्य सुनकर, मुदित पुरवासी हुए
शुभ-द्रव्य पूजन केलिये ले, आलयांतर गत हुए।
सब दर्शकों की देह की सुधि, थी नहीं स्वस्थान में
मेधावियों के मन जमे थे, चरन-कमल महान में ॥

यद्यपि सदा इस भाँति ही का, देव-गृह में मोद था
'थाथी खज़ाना असल खाली' सोच गोपन विकल था।

विकल थे उस गाँव के जन-अन्न जल को छोड़ के।
था छोड़ कर जन मोह तन पर, चरन में मन भेड़ के॥

दो॥ वरणन यों करने लगे, राम-रूप अभिराम।
'पाशा' का डर था बड़ा, अन्य मार्ग नहिं, वाम!

हरि॥ "कौशिक महर्षि सुयाग का जो नाम रक्खा आपने
नेक्ता मुनी का बन हरायी, दैत्य सेना आपने।
नैपुण्य दरशाकर दमाये, दम्भ लङ्का-नाथ के
काठिन्यता सह कैकयी की, काननों में जा सके॥

"केवान-नैन मुझे निभालो, अन्य कुछ नहिं करसके
केली-विनोद तुम्हें रुचे फिर मक्त का भी हो सके।
केकर कुरूप भयंकरानन ताड़का का वध किया
फिर यामिनीचर सूरपनखा को तुम्हीं ने मथ लिया॥

"प्रह्लाद नारद विनुत तुम हो, भक्त मारुत के सदा
इस भक्त 'गोपन' के हृदय में भी रहो सुख से सदा।
कैंकर्य की जब बात सबको ज्ञात होगी तब मुझे
निज क्रोड विस्तृत, चन्द्रमा जो, लो त्वरा उस में मुझे॥"

अप्रगट करने योग्य विवरण फैलना ज्यों चाहता
थे चाहते आक्षेप करना कुजन कुछ धर शतृता।

सहसा गबन की बात फैली शाहके दरबार में
अविभिन्न श्रीपति-भक्ति में रत, गोपना भद्राद्रि में ॥

अक्रूर मादन मन्त्रि दोनों को बुलाया शाह ने
कहने लगे "तहशील पूरी गबन की गोपन्न ने।
सन्देशहारक-दूत दोनों को रवाना झट करो
खाते मँगाकर जाँचना है इन्तजाम सभी करो ॥

ो॥ दूत पहुँच कर दास से, कहने लगे "सलाम।
खाते की कल जाँच है, बोले वज़ीर आम" ॥

रि॥ "धन धाम धात्री पुत्र दारा संग नहिं आते कभी
योगीन्द्र बुध सब वेद कहते हैं, सतर्क रहो अभी।
यह ध्यान में रख खरच सब की, शाह की तहशील ही"
यों कह रुहायी अश्रुधारा भक्तने—सन्तप्त ही ॥

"कृपया कहो 'अब कुछ नहीं है गोपना के पास भी
वह भक्ति के वश हो खज़ाना दे चुका है सान्त भी'"।
इसको बढ़ा कर नृपति से जब दूत बोले क्रोध से
मुँह तमतमाया तलमलाकर पादुशा का क्रोध से ॥

दरबारियों को झट बुलाया राय पाने विषय में
पर कौन कह सकता कि गोपन क्षम्य है इस विषय में।
'है अर्ध-अंगीकार-सूचक मौन' बूढ़े बोलते।
इसहेतु नरपति ने कहा यों, "हे गुणी! क्या बोलते"॥

"सरकार का है वह खजाना गबन करना दोष है
जब तक उऋण होता नहीं वह बन्धकी अनिवार्य है" ।
जब मन्त्रियों ने यों कहा, सुन पादुशा हैरान थे
दुविधा रही कि गुपन्न 'जन' है उधर पैसे गबन थे ॥

दो ॥ पुरवासी ने जब सुना, संकट में गोपन्न ।
पडकर तपता है तपी, जमा हुए तज अन्न ॥

बिम्ब चन्द" भक्त तुम क्लेश छोड़ो, सतत उनको न छोड़ो।
भक्ति वश द्रव्य, हाँ ! है, खरच तुमने किया है ॥

गत-सलिल-सेतु-बन्धन, तज पकड़ नन्द-नन्दन।
हृदय उनमें समाओ, त्वरित विनती बताओ ॥

बिरद उनकी रही है, भक्त जन का वही है ।
बहुत तुम जानते हो, तदपि मन फेरते हो ॥

करि त्वरित 'नाथ' बोला रघुपति गया अकेला ।
भक्त जनको सदा हो मुदित करता सदा ही ॥

दो ॥ पौर गये यों शान्त कर, गोपन को निजवास ।
राम-चरण में मन लगा, मुदित हुआ था दास ॥

दुमिलि ॥ रघुवंश शिरोमणि राम परं, भवसागर तारण भीति हरं
नहिं मान न रोष न मोह सदा, पर-निश्यलतत्व प्रभू सुखदा
यह भक्त गुपन्न इसी पुरि में, सब छोड़ कहाँ तक आप नमें

रघुराम गुपन्न अशान्त सुनो, अति उग्र भुआल अशांत सुनो
शरणागत-पोषक राम प्रभो, करुणालय! केवल दीन-विभो
दशशीश-विनाशन दाशरथी, भव मोह-भयंकर युद्ध-रथी।
मृदु-पंकज-लोचन श्याम-तनुं मनमोह-शिखा वनमाल धनुं
यह दारिद दुःख असह्य प्रभू, फिर अन्य उपाय न अन्य प्रभू
यह भूल बडी नरपाल कडे, इस संकट में हम आन पडे
तुलसीदल-धाम विधान कहो, निज क्रोड छिपा कर हाथ गहो

दो॥ बड़ी भूल मेरी हुई, यदपि भक्ति वश, राम।
क्रूर कर्म्म मम भूल कर, मुक्त करो अभिराम॥

हरि॥ जब शाह चिन्तित थे सभा में समय पाकर दूतने
गोपन्न की कृत्रिम कथा का गीत गाया मोहने।
"हर स्थान के पैसे मिले पर एक इसको छोड़ के"
कृपया बनालें काम बिगड़ा, गोपना को भेड के॥

ज्यों भ्रान्त-आत्मा मोह में बह कूल पाती ही नहीं
त्यों विचार-समुद्र में गिर, कूल पाया ही नहीं।
असहाय पुरुष महाय के हित दूसरों को हेरता
दरबारियों की तरफ देखा, शाहने बल जोडता॥

गोपन्न दुविधा में पडा था, "क्या करूँ सब कुछ गया
कर्त्तव्य मेरा है खज़ाना भेजना जो नहिं किया।

उस तरफ प्रेमानन्द मेरा है पती के चरण में
'कर्त्तव्य को या प्रेम को' मैं मान सकता लोक में॥

"है रूप कहते प्रेम का ही वेदगर्भ समाज को
ज्यों प्राण रहित शरीर निष्फल मूर्ख शिष्य महर्षि को
सुन्दर शरीरी मूक पर वह, क्या किसी को लाभ है!
चौडी नदी धारा नहीं है कृषिक को क्या लाभ है॥

"सौन्दर्य की आशा बडी ही माँस तन में तो नहीं
इस तरह ही कर्त्तव्य भी है, प्रेम जब उसमें नहीं।
भगवान भी तो प्रेम ही से सृष्टि-रचना कर सके
प्रकृति भरी है प्रेम ही से प्रेम सब, सब कह चुके॥

"संघठित रूप समाज का भी प्रेम ही से है बना
यदि प्रेम करना जानता नहिं भाग्यवान नहीं बना।
सबसे प्रथम है प्रेम जग में, अन्य उसके बाद ही
भगवान पर जो प्रेम भक्ती है हमारी सार्थ ही"॥

यों तट लगाया सोच-सागर से खुशी से नाव को
झट दूर सब भ्रम हो गये तब मिल गया सुख दास को॥
उस तरफ़ भूपति क्रुद्ध हो कर दूत से बोला "अरे!
क्या अक्ल तेरी भी गयी थी घास चरने, बापुरे॥

"पैसे खजाने में नहीं थे, जब सुना, तुमको तभी
था बेड़ियों में बन्द करके दास को लाना कभी।
झट दौड़ जाओ 'भद्र-गिरि' को पकड़ लाओ खींचते
सब गबन कर सरकार पैसे ठग दिया है नाचते" ॥

यों क्रुद्ध हो कर शाहने जब हुकुम भारी दे दिया
दूतपद चले सब दूत मिल कर, धार वेष घना नया।
अति अल्प समय लगा पहुँचने केलिये, सब को वहाँ
उस समय बैठे थे कचहरी में, गुपन्ना खुश वहाँ ॥

नवकर जताया हुकुम भारी दूतने तब दास से
सुन प्रथम हर्षित हो गया था, हास के आनन्द से।
बोला "कहो सच ख़बर मुझसे वजह क्या इसकी कड़ी"
सुन मुहँ बनाये दूत बोले "वजह है इसकी बड़ी ॥

"अब शाह से सब खुल गया है आप से हम क्या कहें
पैसे किये सब ख़र्च तुमने बस यही है क्या कहें"।
"क्या ऊँच नीच बिचार इस में शाह ने कुछ भी किया?"
पूछा गुपन्ना ने उन्हीं से "दोष मुझ को क्यों दिया?" ॥

"बस बस न देरी कीजिये अब, जल्द जाना है वहाँ"
झनकार कर सबने निकाली तेग़-असि तीखी वहाँ।
अति शान्त चित्त विशाल हृदयी गोपना सन्ना गया
"अब क्या विधान कहो परात्पर" कह गुपन्ना गिर गया ॥

दो ॥ प्रभु का भक्त बडा, कभी, प्रभु से होता भिन्न।
क्या छाया तनु से कभी, होती जग में भिन्न! ॥

हरि ॥ झट सलिल-सींचन से उठाया दास को उन दूतने
"ये खेल हम से अब न बनते," कह डराया दूतने।
अब हाल निज का गोपना को ज्ञात हो आया बुरा
उस समय कबिरा वाक्य भी झट स्फुरित हो आया खरा ॥

"हरकार! अरज़ी एक ही है आप से कृपया सुनो
मैंने बनाया धौहरा है प्राण-कण से ही, सुनो।
अब हृदय पूर्वक प्रिय सुदर्शन का करूँ दर्शन अभी
इतना नहीं करने दिया तो प्राण निकलेंगे अभी ॥

दो ॥ " कैसा सरल स्वभाव है, गोपन है अति क्लान्त
'देखो भाई जल्द ही, रघुपति को अति दान्त' "।
उछल पडा सुन गोपना, दौड़ गया अतिवेग
हर्षित हो हरकार ने, देखा उनका वेग ॥

भु ॥ "अहो! नाथ जाऊँ तुम्हें छोड के
न जानूँ कि आना कभी हो सके
न पत्नी न बच्चे न गृह की सुधी
रहें प्राण मेरे सदा सन्निधी ॥

हरि ॥ "माँ बाप के हाथों पला मैं जन्म से, श्रीराम हो
वय पा विरक्तों में मिला मैं लोक से झट पृथक हो।

तब मैं पला प्रभु-पाद-पद्मों में सदा अति तृप्त हो
जानूँ न मैं कैसे सहूँगा, राजदण्ड .गुलाम हो।

गा॥ "सीतांशुप्रति-शोभमान-मुख से, काश्मीर दुश्शालसे
प्रेमारद्र-विशाल-स्वच्छ मन से, स्वर्गीय हारालि से।
कान्तिस्फार-विभूषण-प्रतति से, शान्तस्वरूपादि से
आओ श्रीपति नन्द-बाल मुझसे होने बिदा आज से॥

गा॥ "जाता ही रहता शरीर जगसे, पालो बचाओ सदा
आते ही रहते युवा-जरठ भी भागो वनों में सदा।
होते ही रहते पुरातन किये, रुक्के यदा हैं नहीं
होते ही रहते अमीर ग़रज़ी, चिन्ता करो या नहीं"॥

हरि॥ झट .खेद कर गोपन्न को जब ले चले दरबार में
निज हाथ बाँधे थे खड़े तब, मन दिये प्रभु-चरण में।
कुछ कुछ कही अच्छी-बुरी जब, दास अति दुःखित हुआ
"श्रीराम सीता-राम आओ" कह अचेत त्वरा हुआ।

दो॥ कोप शान्त हो भक्ति से, पिघल बहा तत्काल।
तप्त दास ने सो पिया, तज विमोह विकराल॥

मन्दा॥ "आऊँ तेरे चरण-युग में, आतम को ज्ञान से धो
माना था रावण-अनुजने प्राप्त था स्वर्ग सीधे।

मानूँ मैं अस्थिर भुवन में राम-सा दैव नाहीं
चूँकी जाना सरल हृदयी राम-सा अन्य नाहीं ॥

हरि ॥ "सुरपा, शिखामणि दैव का जो, जो मनोज्वल भूषणी
तामरस-नयन गुणी सुधीमणि भक्त का चिन्तामणी ।
तब ही कहा मैंने तुम्हीं से 'नाथ ! चरणों में लियो'
कह भी दिया छोड़ो न मुझ को, राम ! कोले में लियो ॥

"बेकार में चिन्ता करूँ क्यों, ये पुरातन के किये
इससे न नीची है अवस्था कर्म्म ने ये सब किये ।
जाता नहीं प्रभु-चरण तजकर अन्य के आश्रय कभी"
यों कह बहायी भक्ति-धारा देखते निश्चल सभी ॥

चौ ॥ "दीन दयालो दीन दयालो, दीन दया पर देव दयालो ।
कनकाम्बर घन श्याम दयालो, सनक-सनन्दन विनुत दयालो ॥
जलज-नयन श्रीराम दयालो, सुरमुनि-वरदा बिरुद दयालो ।
नारद मुनि नुत भक्त कृपालो, सारसाक्ष रघुनाथ कृपालो ॥
दिग-रथ लोकाधार दयालो, पशुपति-कार्मुक-तृटित कृपालो ।
आगम-कल्पित अमित दयालो, नाथ अनाथाधीन दयालो ॥

शा ॥ "मेरी भक्ति अनादि नाथ फिर भी माँगी कभी कुछ नहीं
पाया जैल-निवास, नाथ इससे पाने कहीं कुछ नहीं ।
बोलूँ नाथ न दास झेल सकता लातें इसी देह से
आखों की पुतली मुझे समुझकर पालो सदा प्रेम से ॥

व. ति॥ "गोपन्न दाशरथि के, चरणों पड़ा है।
रागादि छोड मन से, कर जोडता है॥
मेरी दयानिधि सुनो, अरजी यही है।
माना परात्पर तुम्हें, गति गोद ही है॥
क्यों जिद्द नाथ करते चरणों पडा हूँ।
सींचो दया-सलिल से तपता खड़ा हूँ॥
पीडा भगाकर मुझे निज अङ्क में लो।
भद्रादि के पतितपा, मुझ को सम्भालो॥

शा॥ क्या हो! श्रीरघुरामचन्द्र कह दो रोऊँ कहाँ तक विभो
जानूँ हेतु मनुष्य हूँ; यह नहीं? पापादि से क्या प्रभो?
जो हो तात, दुरात्म-पुत्र बचता पाकर क्षमा तात से
वैसेही निज पुत्र-सा समुझ के पालो बचाओ इसे॥

दो॥ कारण अवगत ही नहीं, कर्म्म-शेष या अन्य।
दया-पात्र में क्या नहीं? गति नहिं तुमसे अन्य॥

इन्द्र॥ श्रीराम बोलो कि, सशङ्क क्यों हो।
शोकार्त्त है दास, तुम्हें मजा हो॥
क्या काम मैंने न किया बताओ
भद्राद्रि श्रीराम प्रज्ञा दिखाओ॥
वेदान्त विद्वान अखण्ड तेजा।
भूलूँ तुम्हें मैं किस भाँति राजा॥

गोपाल सौन्दर्य मुझे बताओ।
देखूँ उसे मैं नयनों समाओ॥

त्रि॥ "मन्धर-धर सुन्दर, तव पद हिय धर, इन्दिरेश स्थिर, ध्यान करूँ
दिनको संवत सम, काटूँ प्रभु में, जानो सुत सम, पाँव परूँ
सदय हृदय शुभ प्रद, चरणों में सद, स्वभाव धर मृदु, नाम कहूँ
भद्रादरवासी, श्रीमनवासी, दास-हुलासी, परम कहूँ॥

हरि॥ रक्षा करो श्रीराम दीनप, शरण में लो आर्त्त को
निद्रा नहीं इस जैल में प्रभु, कष्ट क्या तुम सह सको!
मैं क्या कहूँ आपत्तिश्रेणी, मैं अशक्त जनार्दना
एकान्त तुमको देखने की है प्रबल शुभ-कामना॥
इक्ष्वाक-कुल-दीपक अनाथप गरुड-गमन परात्परा
अभिमान आर्त्तोंपर दिखाओ आर्त्तजन हृदयेश्वरा॥

"धनवान-दीन महान-नीचा लोक का क्रम है यही
जो कुछ करे सब 'मान्य' कहते, वित्त कुछ हो तो सही।
शुभ कर्म्मनिष्ठा, दीन पर वह, तो नहीं गिनती कहीं
मोती पड़े हैं पाँक में ही कुकुर-मुत्ते हर कहीं॥

"हैं भाट अनपूछे उपस्थित, स्ताव करते द्वार में
जो अन्न माँगे दीन जाकर नीच वह परिवार में।
उस तरफ़ सुख में भ्रान्त होकर मर गया वह लोक में
इस तरफ़ रोता अन्न के हित बह गया यह शोक में

"सम्पत्ति है घर में बहुत ही, वारिसों की खोज भी
बेवारिसोंने भी चढ़ाये दाँत उस पर ही कभी।
क्या लाभ है उस वित्त से जब, दीन तपता दैन्य से
जबतक रहेंगे प्राण तन में मेटिये यह मोद से॥

"दुर्दम-विषाद कराल गुरुतर कष्ट हैं इस दास के
अपराध मेरा क्षम्य है प्रभु, नाथ, नाथ-अनाथ के।
गौरव नहीं जो कुछ रहो तुम जेल की स्थिति है यही
यद्यपि नृपति हैं सरल-हृदयी नियत जन कटु हर कहीं॥

दो॥ सोचा सोचा शाह ने, हुकुम दिया "हरकार!
पेश करो उसको यहाँ देखेंगे सरकार"॥

हरि॥ तब शाहने पूछा "गुपन्ना! क्या किये पैसे कहो
क्यों खर्च तुमने सो किया है जल्द ही ब्यौरा कहो"।
धीरे हृदय में ध्यान करके राम को साकार में
बोला गुपन्ना "शाह की जै हो सदा संसार में॥

"देवल बना है भद्रगिरि में आप के ही वित्त से
केवल निमित्त बना गुपन्ना वित्त के ही लोप से।
संसार के सब जीव-धारी काम करते हैं तदा
परिपूर्ण विश्वसृष्टि कर्त्ता प्रभु खिलाता है यदा॥

"इस तरह, लीला देखने प्रभु राम की, इस लोक में
अर्पण किया कैंकर्य में छे लाख रुपये मोद में।

सब वित्त, क्या मैंने किया व्यय, बाध्यता सोचे बिना ?
यदि दोष मुझ पर ही लगाते, दण्ड्य तब है गोपना ॥

"इस विश्व का कर्त्ता वही है सकल उनकी योग्यता
इस विश्व का वैभव हमेशा आप की ही निपुणता ।
यद्यपि दिखावे केलिये तुम, बन गये 'पाशा' यहाँ
इस विश्व के शाश्वित महीपति राम ही बनते यहाँ ॥

" 'जो कुछ खजाने में जमा है, वह नहीं परमार्थ का'
योंही बना होता यदी, मैं भेजता भदराद्रि का ।
इस हेतु सोचा 'जब प्रभू है योग्य-स्वामी वित्त का
क्या दोष अर्पण में रहेगा ? खर्च यो मैं कर चुका ॥

शा ॥ "योंही आलय भी बना, असल में है धर्म, 'श्री' आप की
मैं हूँ नाथ निमित्त मात्र सच ही सेवा हुई आप की ।
पालो या अब जैल में सहज ही भेजो तुम्हारी स्पृहा
होना था सब हो चुका फल तुम्हीं सोचो, तुम्हारा रहा "

हरि ॥ अब भूप के मन में पड़ी शक "दोष क्यों दूँ दास को
श्रीराम को ये मानते प्रभु, सब मसीही ईसु को
'अल्ला-.खुदा' यों रोज कहते मुसलमान मसीद में
जिसका रहा जो मत, उसीकी आप जाता गोद में ॥

"पर जो क्षमा इनको करूँगा सब करेंगे यों सदा
शासन हमारा कठिन होगा, सब करेंगे यदि तदा ।

यों भाव-सागर का लगाया कूल सहसा शाह ने
बोले इसे रख जैल में, दो कर्म्म-फल यों भोगने ॥

यों शाह की जब कठिन आज्ञा मिल गयी हरकार को
तब ले चले झट जेल में वे, भक्त-जन की नाक को।
उसमें प्रकाश नहीं पहुँचता सूर्य का भी भीति से
उससे पड़ी अनबन पवन को देखता नहिं प्रीति से ॥

दो॥ अतिशय-भय उस जैल में, होता था प्रति-रोज।
"कौन क्या करे, कर्म्म है," जन कहता हर रोज॥

मत्त॥ "खोज करूँ सिय-नाथ कहाँ, जब ठाँव 'भदारदि' ही कहलाता
जान अभी पड़ता सच, दीनप! जैल निवास तुम्हें सुख देता।
द्रौपदि ने कुरु-शान हनी, जब चीर मिला, प्रभु ने अपनाया।
दास सभी सच पा सकता यदि दीनप का सहसा मन भाया॥"

दो॥ बन्दीगृह के निकट कुछ, गाते थे शिशु वृद्ध।
रोते; गोपन "कह सभी, स्थिति से हो सम्बद्ध॥

हरि॥ निज उदर में ब्रह्माण्ड धरकर चर-अचर-समुदाय की
रक्षा करोड़ों बार की थी आपने सद्भक्त की।
मैं हूँ तुम्हारा, भक्तवत्सल! आप क्या मेरे नहीं?
रक्षा करो भद्राद्रि-वासी, आसरा तुम हर कहीं॥

शा ॥ क्या हो श्रीरघुरामचन्द्र कह दो, छुट्टी मिली या नहीं
जाने जैल निवास शान्त करने, माता तुम्हें ना यही ?
माना था अपना तुम्हें हृदय में, खेला सदा खेल ही ।
भद्राद्रीश्वर भक्तवत्सल प्रभो ! मेरी विनै एक ही " ॥

दो ॥ एक समय उस जेल में, हुई राम की भ्रान्ति ।
जननें परवश में कहा, 'दाता देओ शान्ति' ॥

हरि ॥ इस तरह गोपन 'भक्तवत्सल' कह रहा था नित्य भी
अन्न जल का ध्यान भी उसने तजा ही था कभी ।
कुछ सतुप-तण्डुल पाव निम्मक धर दिया चपरासने
"क्या कर सकेगा द्विज इसे ले" कह दिया गोपन्नने ॥

"विपरीत है लीला दई की लोक के आलोक में
अदृश्य मुनिमन-सतत-लख श्रीपति निरंजन लोक में ।
कूडे कचेडे में पडे सब, भूल जाते हैं उन्हें
बुध नेति नेति पुकारते हैं वेद जयों गाते जिन्हें ॥

शा ॥ शान्ताकार विशाल-नेत्र मुकता नासाग्र में सर्वदा
माता उन्नत मोहता तिलक है कर्णादि से मोक्षदा ।
है दुश्शाल विशाल स्कन्ध पर से ढुलता हुआ सा पती
मालायें शुभ फूल की विचलती हैं कण्ठ में शोभतीं ॥"

दो ॥ मन में भजने केलिये, मोहन का आकार ।
निर्मित कर यों दासने पूजा प्रभु-साकार ॥

शा ॥ कारागार पडे पडे नरक की आपत्तियाँ झेलता
अन्नाहार नहीं नहीं सपन में, तेरा विषै बोलता ।
रोता है यह दास सत्य तुम से, चूँकी तुम्हीं हो पती
फूँगी हाथ लिये चलो विहँसते गोपाल गोपी-पती ॥

हरि ॥ भद्राद्रि में श्रीजानकी के, वाराणासी में उमा
फिर तिरुपती में मंगतायी, जगत के 'पूरो'---प्रमा ।
अवतार की नहिं अन्त जग में हृदय में शक दास के
गोपन्न कारागार-वासी, कब बनेंगे दास के ! ॥

दूसरा - भाग.

गीत

श्री गोपाला गोपा, दीनों के तुम पोषा ॥ ध्रुव ॥

भक्त योगि सत्तमों से सतत दृश्य शोभा ।
आर्ष-नियत-योग संग, अमित दृश्य आभा ॥ श्री ॥

जगत में कहीं नहीं अनन्त-से कृपालू ।
पवन-तनय-हृदय-हंस के समान पालू ॥ श्री ॥

हरि ॥ इस लोक में सब जीवियों का देह तक सम्बन्ध है
इस बन्ध के ही मोह में सब लोग होते अन्ध है।
सामान्य दृष्ट्यनुसार जग के प्राणियों में पक्ष दो।
है एक नारी दूसरा नर अन्य नहिं ये पक्ष दो ॥

इस भिन्न दृष्ट्यनुसार जब तक पुरुष बहता लोक में
तब तक न मुक्ती मनुज को है, सत्य, इहपर लोक में।
यह आश्रितावलि संग आती ही नहीं कटु शोक में
यह प्रेम उनका खोखला है वेद कहते असल में ॥

वेदान्त यह सब जानता प्रति पुरुष, फिर क्यों मोह से
पड संग-दोषों में सदा नर, स्वयम बहता भ्रान्ति से।
हैं भिन्न यद्यपि मत इसी पर, असल में, अज्ञान से
नर भूलता निज तत्व को ही प्राकृतिक शृंगार से ॥

नर देह का यह सहज गुण है, समझता सब स्थिर यहाँ
दिन भर परिश्रम आप करता, घूम घूम जहाँ तहाँ।
कुछ लोग कहते भक्ति से ही राम-दर्शन प्राप्त है
कुछ अन्य कहते कर्म्म से ही प्रभु-सुदर्शन प्राप्त है ॥

भक्तेतिहासों से प्रगट है भक्ति वश भगवान हैं
फिर कृष्ण की गीता सुनी तो कर्म्मवश भगवान हैं।

सद्भक्ति-कर्म्मों की मिलौनी विद्यमान 'गुपन्न' में
जाता सताया जैल में क्यों, 'गोपना' एकान्त में

पर-तत्व इसका एक ही है 'भोगना अपना किया—
अनिवार्य,' तत्पश्चात ही है भक्ति-कर्म्म सुना दिया।
यों गोपना को भोगना है जैल-वास अवश्य ही
'जिसका किया सो भोगता है' राह मामूली यही॥

जब धान निम्मक मिल गया था, कूटना था धान को
सो कर बनाया भात को पर नमक से क्या कर सको।
पिरे आ खडा झट नियत नौकर, दूत यम का तो नहीं!
बोला "मिलाओ नमक उसमें खाद्य वह तब तक नहीं॥

ज्यों कुजन-संगति से गुणी भी पाप करता विवश हो
आदेश उनका मानता वह यदपि उस पर रत न हो।
त्यों 'काठ की पुतली' गुपन्ना ने मिलाया नमक में
हरकार यों कर फर्ज पूरा, झट गया निज काम में

दो॥ राम नाम मन में लिया, गोपन ने मन जोड
संकट दे, मन को कहीं प्रभु से सकता मोड?॥

हरि॥ नहिं राम कुञ्जों में वनों में, खोजना भी है वृथा
वे वास करते दीन के घर, बन उन्हीं के सर्वथा।
आतिथ्य आर्त्तों का ग्रहण कर, आप जाते नियम से
गाओ-बजाओ गीत-वीणा, .खुश नहीं वे बधिर से॥

भजना-समाजों में न खोजो, वतन पतितोद्धार में
होओ न तुम जगसे विमुख, हैं नाथ पतितोत्थान में।
वह स्वर्ग भी सूना नहीं वे, त्यक्त पुरुष गृहान्त में
भक्ति-निधि को मत टटोलो, कर्म्म-योगि समाज में॥

रवि-किरण में उसने छिपाया रूप को खोजो वहाँ
सौन्दर्य अपना सुमन को दे, दीन-घर बैठा यहाँ।
इस तरह कहते हैं अनुभवी गोपना की शक यही
हैं भक्ति-दैन्य मिले हुए, कब देख पड़ते तुम सही॥

दाता बड़े हैं जानकी-पति बिरद उनकी मोक्षदा
तब गोपना से माँगता क्यों भक्ति-दान धनी! सदा।
निर्वाह जीवन का तुम्हीं से नित्य होता है यहाँ
सामान्य पुरुष गुपन्न तुम को तृप्त कर सकता कहाँ॥

सब दीन-दुखियों का हमेशा भार तुम पर ही रहा
पर रीति है विपरीत, ले तुम, दीन के घर जो रहा—
उपहार देते हो बढ़ा कर, भेद इसका क्या कहो
जो कुछ सुना कह भी दिया, तुम रुष्ट नहिं हो कर कहो॥

जब तक द्रुपद की नन्दिनी थी चीर को कर में लिये
तब तक न तुमने कुछ किया था कठिनतर मन को किये।
'मेरा नहीं अब बस चलेगा' कह गिरी जब द्रौपदी
झट ले असीम दुकूल को तुम त्वरित आये सन्निधी॥

है तत्व इसका तो बड़ा ही अकथनीय महान भी
सब त्याग कर प्रभु-क्रोड में जो आगया, नहिं भय कभी।
इस तरह कहते ही मिला था, हृदय को आनन्द भी
उस मोद-निधि में बह गया था, भूल तनु का हाल भी॥

कुछ समय बीता होश आयी भूख थी होती कड़ी
नमकीन अन्न तुरन्त खाया भूल कर आपद बड़ी।
"आश्चर्यः परमाश्चर्यः नहिं नहिं, स्वप्न होगाः सच नहीं
मैं हूँ कहाँ ? कलधौत के गृह ! पाक यह मेरा नहीं॥

यों क्यों कहा गोपन्न ने जब अन्न खाया था तभी ?
नमकीन अन्न हुआ रसोदन, जैल में सम्भव कभी ?
यह ख़बर पाशा के निकट झट, पहुँच कर बलने लगी
"श्री नाथ कह वह दास गिरता" दूत यों कहने लगे॥

"हैवान सा है गोपना" कह शाह कुपित हुए तभी
यह वाक्य केवल बाहरी था, मन नहीं था यों कभी।
"यद्यपि अनेकों कष्ट देना चाहता नर भक्त को
भगवान रहते द्वार पर ही राखने सद्भक्त को॥

"तब क्यों न इनको मैं बनाऊँ हेतु-मात्र विधान में
द्वारा इन्हीं के मैं जताऊँ 'भक्त क्या ?' संसार में-
यों गिन दिखावे केलिये मुहँ को बनाया ज्योति सा
"बाँधो उसे तुम काठ पर झट जीव रहित शरीर सा॥

"हर चौक में उसको खडाकर मारते जाओ अभी"
सब बिडर कर हरकार भागे, जयल-खाने में तभी।
तोड़े मरोड़े हाथ उनके बाँध कर कटु-पाश में
जब था शकट तय्यार बाहर घूमने को शहर में ॥

उस पर चढ़ाया दास को जो था अचेत विदेह-सा
मन को दिये प्रभु-चरण में ही विवश श्रीप्रह्लाद-सा।
कटु-लकुट-वर्षा बरसती थी, सोचिये इस पर नहीं
कटु-लकुट, चूँकी सोचता था, 'दूर से मुक्ती नहीं' ॥

जन-देह कोमल लगुड आति कटु, शक्ति हीन गुपन्न था
जो देखता बेहोश होता, दर्शकों का हाल था।
यद्यपि अचेत गुपन्न था तब, देह की स्पृहता नहीं
हर हाड़-नस थी बोलती तब "दास दण्ड्य नहीं! नहीं" ॥

"सर्वत्र इनकी देह में हैं राम की ही मूर्तियाँ
जो भक्ति-कवचाबद्ध ही हैं, ये वृथा सब रीतियाँ।
ज्यों मधुर-मत्त-पदार्थ पीकर मनुज रहता मत्त-सा
त्यों भक्ति-मत्त-पदार्थ पीकर दास था उन्मत्त-सा ॥

जब वह नशा जन से पृथक हो नौकरों की देह में
श्रम रूप धारण कर गया था, दास था उस जयल में।
जब मत्त जाता देह से तब अखरती बाधा कड़ी
दुखने लगा गोपन्न का तनु त्यों, विपत्ति बड़ी कड़ी॥

दो ॥ दास जैल में राम से, कहने लगा, "महान।
झेल नहीं सकता कभी, वार कठोर महान ॥

हरि ॥ "नहिं दास बाधा झेल सकता राम तुम जब तक वहाँ
पुखराज मणि मोती कई ही धार कर कब तक वहाँ ?
निर्लज्ज क्या तुम हो ? कहो तो, रत्न ये मैंने दिये
लज्जा नहीं; उनसे सजाते देह को, मेरे दिये ॥"

इस तरह करता था करों से, योग्य भजना गोपना
सब वार गायब हो गये थे, अति विचित्र जनार्दना।
अदृश्य यद्यपि रूप प्रभु का, वेद ही की सूक्ति से
श्रीराम लीला दृश्य ही है प्रभु-चरण-अनुरक्ति से ॥

"क्यों नाथ पौढ़े स्वर्ग में हो, परम रुचि पर्यंक क्या ?
क्यों बाल्य-मित्र सुदाम को लख, शीघ्र दौड़े, मित्र क्या ?।
झट धर्म्म-पत्नी से मँगाया सलिल धोने चरण को
फिर आपने पंखा चलायी, भाग्यवान सुदाम को ॥

शा ॥ "आँखें हैं उनकी, सदा नयन में, श्रीकान्त का रूप हो
हैं वेही कर, नाथ की नित करें पूजादि सानन्द हो
वेही पाद, सप्रेम गोकुल चलें सेवा करें कान्ह की
वेही कान सदा पुरातन कथा काना करें कान्ह की ॥

"है आत्मा वह, जो सदा .खुश रहे, श्रीनाथ की भक्ति में।
है जीहा, प्रभु के कथा-कथन में आशा जिसे लोक में ॥"

श्रीरामामृतधार हो, सुकविता, बातें-गुँथी-हार में
श्री रामाश्रित, सो कवी, मनुज सो सेवा करे लोक में ॥ ”

हरी ॥ इस तरह बीते दिन अनेकों गोपना तत्पर वहाँ
अति क्रुद्ध हो गोलकोण्ड के नर-पाल आये थे जहाँ ।
दरबार के सब भी उन्हीं के साथ आये जैल में
तब था खजाँची को बुलाया शाह ने, उस जैल में ॥

पूछा “कहो क्या हाल है उस गोपना का, जैल में”
बोला खजाँची “आप भोले दास खोटा असल में ।
कितने दफ़े पूछा उन्हींसे कुछ बताता ही नहीं
उलटे मुझी से बोलता है ‘स्थिर यहाँ कुछ भी नहीं ” ॥

सहसा हृदय में शाहने यों दास की स्तुति की तभी
“वहवा! तुम्हारे भी बराबर जनमता जग में कभी ।
चाहे रहो हिन्दू सदा तुम, मैं रहूँ मुस्लिम सदा
आदर्श सब का एक ही है, एक ही है मोक्षदा ॥

“जो भक्ति अति ही आप में हो तब जरूर महान हैं
फिर भी भुगतना ही पड़ेगा, कर्म्म-फल अनिवार्य है ” ।
यों बह रहा था भाव में नृप मन्त्रिने पूछा त्वरा
“यों आप क्या हैं सोचते इस जैल में काहिये त्वरा ॥ ”

“क्या कह सकूँगा मन्त्रि-सत्तम, आप से यह आपदा
किस भाव से इस को दिलायी नौकरी है, या .खुदा! ॥ ”

मुझ को गिराया आपने ही शोक के आगार में
कोसूँ तुम्हें क्यों शाह का ही कर्म्म-फल संसार में "॥

नव कर कहा अक्कन्न ने तब "क्यों रुलाते है मुझे
यह दुःख जो है आपका, तो समझिये भागी मुझे।
मैंने नहीं कुछ भी किया है दुःख देने केलिये
यह भक्त है इसको खिलाया मुक्ति पाने केलिये॥

"पर कौन यह था सोचता, सब गबन करता वित्त को
हम सोचते हैं एक ही को नाथ करते अन्य को॥
हाँ लोक की लीला यही है पण्डितों की दृष्टि में
है जाहिरे में ढोंग सब कुछ, स्थिर नहीं हम असल में" ॥

यों तत्व का संक्षेप में ही सार सुनकर शाहने
पूछा "कहो अब मादना जी, कुछ कहा अक्कन्न ने
झट निकट जाकर मादना ने यों कहा "प्रभु आप से
मैं अधिक ही क्या जनता हूँ पूज्य अक्कन मन्त्रि से"॥

"जब शाह ने पूछा, हमारा धर्म्म देना मंत तदा
इस भाव से ही बोलता हूँ, पालने की विधि यदा।
जब आप पाशा हैं सबों के, पालना सबको सदा
निज शास्त्र-रीति विवेचना से, धर्म्म नरपा का सदा॥

"सब प्राणियों के पालने में सर्वधन सम्मिलित है
अर्थात यह सब है प्रजा का फिर प्रजा के आप हैं।
यों बाध्यता पारस्परिक है बच नहीं सकते कभी
हैं आप यों प्रतिबद्ध धन के तब, कहेंगे जब सभी ॥"

"तब मैं जरूर गुपन्न के हर हाड को तोड़ूँ अभी"
कह तेग खींची म्यान से झट, डर गये थे जब सभी।
गोपन्न हाज़िर होगया था देखते ही देखते
है देखना, होगा अभी क्या, राम के ही देखते ॥

दो ॥ व्याघ्रानन का केशरी, कहतीं आंखें उग्र
ऋषि पुंगव गोपन्न को, खाऊँ अभी समग्र ॥

हरि ॥ कौशिक महर्षि तपी बडा था, क्या किया हरिचन्द्र को
बलवान सप्तम ग्रह बडा ही क्या किया नल-राज को।
जब शान्त-चित्त विराग-मूर्त्ती, थी खडी सन्मुख अडी
थर्रागयी थी देह नृप की, अनल पर गंगा पड़ी ॥

संभल गया दरबारियों में तब नृपाल अति त्वरा
बोला "नहीं यह दण्ड्य मुझ से दण्ड दूँगा दूसरा।
लुढ़का इसे हरकार कल सब, कण्टकों के ढेर में
कुछ भी नहीं इस दास की है, योग्यता संसार में" ॥

दो ॥ शरेद काल का समय था, चारों दिक आनन्द
कृष्णजन्म के स्थान में, गोपन महान बन्द ॥

हरि ॥ मधु पुष्प से थी ऋतु भरी तब, पहन सुवरण चीर को
सानन्द सरल विहंग प्रति दिक, मोहते थे धीर को।
ऋतु-श्रोणि की शोभा बढ़ायी, कूलने सरि के, बडी
धारा बही अति मन्द गति से, सरल-मन-प्रमदा बड़ी ॥

सित-मेघ निकले थे गगन में चँवर देने राज्ञि को
विकसित सुमन पर भँवर बैठे चूमते क्यों गाल को।
नभ में खिले निशि को कुसुम बहु, राज्ञि-देह सँवारने
सित मेघ से क्यों झाँकते हैं चन्द्र सुन्दर जो घने ॥

इस तरह थी सुन्दर शरद ऋतु, जैल में गोपन्न था
कटुतर सजा जब भोगनी है, आगया वह समय था।
काँटे जमाये नियत जन ने क्रूर कुटिल बबूल के
उसपर फिराया कमल तनु को भक्त सत्तम दास के ॥

जब श्याह वर्ण कुदेह-धारी, रक्त का काँटा हुआ
कुछ होश पाकर गोपनाने यों कहाँ "जी क्या हुआ"।
जब नम्र होकर नियत जन ने क्रूर कर्म्म जता दिया
तब भक्ति रत-गोपन्नने प्रभु-चरण में मन दे दिया ॥

त्रि ॥ "राजिव-दल-लोचन, भव-भय-मोचन, नाथ पुरातन, ज्ञन परं
भद्राचल-वासी, भक्त दुलासी, सिय-मन-वासी, कीर्ति परं ॥

असुरन के नाशन ताटकि-मर्दन, राजिव वैभव राम परं
इस पृथ्वी में नहिं, प्रभु सम कोई, निगमने कहा, विधन हरं॥

दो॥ "राघव के सम दूसरा, इह पर जग में नाहिं।
पालक मेरा दूसरा, मेरे मन में नाहिं॥"

हरि॥ इस तरह दिन जब बीतते थे, खबर भेजी शाह ने
"क्या हाल है गोपन्न का अब, क्या कहा है दासने"॥
"जय जीव" कह कर नियत जनने यों कहा अति खिन्न हो
निज-कुक्षि के हित काम करते, हम सभी आपन्न हो॥

"दुखने लगे हैं हाथ सबके, श्रमित सब होने लगे
जो शोक से गोपन्न कहता 'राम' संकट सब भगे।
उसको नहीं रहती कहूँ क्या, देह की स्पृहता कभी
फिर मारने से फायदा क्या' नाथ! कहते हैं सभी॥

"दिल खोल कर कह भी दिया है जो रहा दिल में उसे
इस धृष्टता को माफ करके आप आश्रय दें इसे"।
यों कह बहायी अश्रुधारा फिर पडा नृप-चरण में
उनका हृदय भी भर गया तब, देख जन को चरण में॥

"हाँ! तदपि कटुतर राज्य पालन" कह हिलाया शीश को
फिर "वृक्ष से बाँधो उसे तब (कह छिपाया श्रवण को)।

मारो उसे कुछ दिन कहूँ मैं, यों लिखा है शास्त्र में"
इस तरह कहता सोचता नृप गिर गया निज महल में ॥

प्रह्लादने भोगा अनेकों कष्ट फिर भी क्या हुआ
हरिचन्द्र की ही बात ठहरी मन्त्र मुनि का क्या हुआ।
इस तरह कितने ही दिये थे कष्ट कटुतर शाहने
सहकर सबोंको, बात राखी 'जन-अदण्ड्य' गुपत्तने ॥

थक जब गये थे शाह इन से, क्रुद्ध अति हो अन्त में
दरबारियों के देखते ही, मन्त्रियों के बीच में।
बुलवा गुपत्त महान को कटु खंभ से बँधवा दिया
अध-चेत श्रीपति-दास के सब वस्त्र झट खिँचवा दिया ॥

जिसकी सदा रमती सुआत्मा भक्त-वत्सल-चरण में
उसको कभी ऐहिक विलज्जा, होयगी संसार में !
योंही गुपत्ताने न कुछ भी, शरम खाई मनुज-सा
चूँकी कुशल था प्राण उसका, राम में अनुरक्त-सा ॥

ब. ति॥ "मोती कहाँ, रख चलो, सब हैं हमारे
सोना मणी, सुनहरे, सब हैं हमारे।
भूपालि जो कुछ सजा सब हैं हमारे
उन्हें सभी, सुन लिया! सहसा उतारो॥

हरि॥ मूरख ! करों को जोड़ते हो नाथ है तेरा कहाँ
जब तक नहीं छः लाख दोगे मारते रहते यहाँ।
जो कुछ तुम्हारा ही नहीं था, गबन किस विधि कर सको
जब गबन तुमने ही किया है क्या नहीं तुम कर सको!" ॥

यों कह लगा जब मारने, तब गोपना ने यों कहा
"सरदार सुन लो क्रुद्ध क्यों हो, है बजा नृप का कहा।
हर नृपति के राज्यांग सागर, भक्ति भजना एक है
जो सब करें उनका सदा ही राज्य रहता शान्त है॥

"मैंने किया है काम उनका, यह सजा तो है बडी
"मैंने किया जो खर्च जग में, मसजिदें बनवा बडी-
तो तुम कभी मुझको गगन तक .खुश उठाते मोद से
हे! तात सबका है परात्पर एक ही सम-दृष्टि से॥

"क्यों तुम मुझे बहका रहे हो 'मूर्ख' कह हरबार में
मसजिद तुम्हारा देव-स्थल है देव मुहमद लोक में।
मन्दिर हमारा धौहरा है देव रघुपति लोक में
केवल बुलाने में फरक है अन्यथा सम लोक में॥

"जैसे हुआ है जन्म मेरा त्यों तुम्हारा भी हुआ
ज्यों मृत्यु होती अवश मेरी सो निजाम तुम्हें हुआ।
आकार वेषाभूषणों में यदपि तुम हम भिन्न हैं
आमुष्मिक-व्यवहार में तो आप हम कब अन्य हैं॥

"इस में नहीं है बात ओछी सब तुम्हारा मगज है
मैं क्या कहूँ कब तक कहूँगा यह तुम्हारी गरज है"
यों तत्त्व की धारा बही कुछ समय तक दरबार में
सब लोग सुन आश्चर्य से यह, जम गये दरबार में ॥

"श्री कर सुदिव्य प्रभाकरों के कुलज साँवल देह है
भव-भव हुआ वैभव हुआ, अब तो पराभव पास है।
इस तरह तीनों शाक्तयाँ तुम में उपस्थित सर्वदा
आरत-शरणय अनाथ-पालक लोक के हो मोक्षदा ॥

शा ॥ "राजाराम रमापती रघुपती राजो सदा चित्त में
होवे कौस्तुभ राम के हृदय पै, सीता रहे सङ्ग में।
चोला काँचन का धरे बदन पै, खींचूँ इसी चित्र को
देखूँ रूप अतीत मंजु अति ही, खोने इसी कष्ट को ॥

शा ॥ "भद्राद्रीश्वर राम हो! पतितपा, हूँ दीन दे ठौर को
राजीवाक्ष कहो कहो, विरति से छाड़ूँ तुम्हें 'भद्र' को
प्रह्लादादि विभीषणांगद-परा, राधामनोह्लाम हो
भक्तानन्द पड़े 'जयिल' में रोऊँ सदानन्द हो ॥

शा ॥ "व्यामोहादि-सुऔषधं मुनिमनोवृत्तिप्रवृत्त्यौषधं
श्रीकैवल्य पदं सदा जगत में संजीवनैकौषधं
श्रीपादाम्बुजरक्ति श्रीकर कहूँ ना अन्य कोई गती
मिन्ती हैं चहुँ पार्श्व, नाथ इनसे बोलूँ विनैं धीमती"॥

हरि॥ इस तरह जब करते गये थे दास उन से प्रार्थना
तब शाह के तन से ढुली थी पूजने की कामना।
पाकर रजाइश गोपना को ले चले हरकार वे
जो कष्ट गोपन को दिये थे, गुम हुए सब विपद वे॥

बढ़ती गयी महिमा भगत की, भीति पाशा की बढ़ी
त्योंही प्रशान्त-दिवस बढ़े थे, जैल में सुविधा बढ़ी।
बीते बरस ऋतु तो किसीने कान भर दे शाह के
दरबार में यों कह दिया था "मन्त्रि भी हैं दास के"॥

तब क्रुद्ध होकर मन्त्रियोंने यों कहा "कारण कहो"
"है गोपना जब दण्ड्य तुमने क्यों दिये ये सुख कहो"।
"नृप-कुशल जिस में गुप्त रहता, खोज कर उसको सदा—
करना विधान वही, हमारा धर्म्म है जग में सदा"॥

"जिससे गबन पैसे हुए हैं टहल उसकी उचित है?"
"हम टहल थोड़े ही करेंगे बन्द जब वह दास है"
"खैदी बना है वह हमारा कतल करते क्यों नहीं?"
"चूकी सजा नृप दे सकेंगे, प्राण ले सकते नहीं"॥

"तुमने कहा यह तत्त्व पहिले तब कहो आरम्भ से
क्यों शाह ले सकते नहीं हैं, प्राण अस्थिर-देह से"
"यह देह बनती मृत्तिका से प्राण भरते प्रभु सदा
यों देह पृथिवी की सदा ही, प्राण प्रभु के सर्वदा॥

"नर-पाल हैं संसार के ही, राज्य तो है लोक का
जग-राज्य का यह प्रण तो नहिं वह परात्पर राज्य का
यों प्राण लेना मनुज का इस लोक में दूषित सदा।
है दूसरा भी तत्व इसका शास्त्र-विधि से सर्वदा॥

"दी सज़ा तुमने मनुज को जब दोष उनसे हो चुका
उद्देश्य सबसे यह बताना, 'काम यह नहिं सुजन का।
है दुःख देना कुजन को भी समझने पथ सुजन का
जब प्राण दण्ड दिया नरप ने फायदा क्या नियम का॥"

"रुकिये, नहीं इसका रहेगा अन्त, वास्तव में कभी
वह है अवश्य महान दोषी बच नहीं सकता कभी।"
यों शाहन तेकर दिया था, फिर कहा "हरकार लो
अब मुक्त-खड्गों पर चलाओ, कट मरे वह सान्त लो!"

"यद्यपि भयंकर देखते ही खड्ग पर चलना सदा
फिर रजाइश पा गुपन्ना झट गया कह "मोक्षदा"।
धर जब दिये निज चरण उनपर, खड्ग बदले पुष्प से
"है अकथनीय महान गाथा" कह गिरा जन मोद से॥

त्रि॥ मंदर-गिरि के धर, जगके सुन्दर, नाथ हमारे, जगत पती।
अस्सी-घट-काशी, के पुरवासी, जगत्प्रकाशी, पतित पती।
क्यों नहिं तुम आते, नित दुःख देते, मुझे सताते सतत गती।
तुम हो गुण खानी, अवढर-दानी, कान्ह सयाने, कपट गती॥

तो ॥ "कर को नित जोड़ करूँ भजना
मन को पद पद्म सजूँ सजना।
कहिये रिस क्यों मन में वरदा
निज-रूप-निरूपण हो सुखदा।"

हरि ॥ 'इस तरह करता प्रर्थना वह' .खबर यह सुन रोष से
वह शाह कुपित हुआ बडा ही, वचन सुन जन के कसे।
"अवहित-अवस्था-कथन छोडो सोचिये भवितव्यता
मैं, पाप हो, दूषित कहें, फिर भी, उसे नहिं छोड़ता ॥

दो ॥ "भारी पत्थर पीठ पर कर अवहेला, राख।
घूसत वह, घर घर फिरा, चपट जमाओ लाख"॥

हरि ॥ आज्ञानुसार उठा, सबोंने पीठ पर सिल रख दिया
वहनीय जब वह भार था नहिं, धैर्य जनने खो दिया।
"कितने गये हैं वर्ष योंही, जानते नहिं तुम इसे
कितने अभी हैं वर्ष ऐसे तुम जताओ दास से ॥

त्रि ॥ "अनुपम-गुण-राशी, तीर्थ-निवासी, घट-घट-वासी, धाम परं
असुरोंके-नाशी, सुरप्रकाशी, मुनि-मन-भासी, देव परं।
त्रिभुवन-प्रतिपालक, सुर-रिपु-घालक, जनके पालक, विश्व पतिं
दश-सिर-धर-खण्डन, आश्रित-मण्डन, नास्तिक-भण्डन,
चण्ड पतिं" ॥

दो ॥ माया से पत्थर सुमन हुआ लुभाता सन्त।
गोपनने पाया बहुत सुख, यद्यपि था श्रान्त ॥

विधाता। "लखूँ मैं श्याम की मूरत, पियारे कान्ह की नीली।
लिये फूँगी करों आवे, लगाके मोहिनी खीली॥

फले आशा लता मेरी, वृथा क्यों मोह धारूँ मैं।
रहे नासाग्र में मुक्ता, पदों में शीश धारूँ मैं॥

गये हैं राम-से राजा, चलाते शान से शाही।
प्रजा की आरज़ू पूरी, कराते आप ले शाही॥

खिले मैदान थे फैले गजब की बात, देखूँगा-
पुनः वे राज आते हैं, फ़ज़र का ताज देखूँगा॥

.खुशी से राम से जोड़ूँ करों को, मोद दर्शाऊँ।
जगत में मोहिनी मूरत, हृदय के ठौर फैलाऊँ॥

प्रभू का हृदय अपनाऊँ, बहाके, मधुर सेवा की-
नदी को, हस्थ-युग जाड़ूँ, भलाई भव्य हिन्दू की"॥

हरि॥ .खुशही बिताया काल कुछ तो गोपनाने जैल में
ऋतु-चक्र में ऋतु ग्रीष्म की तो आखड़ी संसार में।
तब शाह बोले "रेत पर ही, हो बसेरा दास का"
तब थी स्थिती ऋतु की सुनो तो, कथन है इस तरह का॥

दो पहर की बेला हुकी, जब रश्मिमाला सूर्य की-
फैली जगत में, बरसती क्या अग्नि-ज्वाला व्योम की।
सन्तोषकारी जग-प्रभञ्जन, ऊष्णता से तप्त-सा-
सन्तापकारी भूमि का अब, बन गया है दग्ध-सा॥

जो शरद की थी सुखद रेती, बन गयी अब प्रेतनी
मुनि-मन समान प्रशान्त-जल, है अनल की सहधर्म्मिणी।
ज्यों प्रेमिनी को प्रेम देता दुःख, कान्त वियोग में
त्यों पद्म भी दुःखित पड़े हैं, सूर्य से जल-लोप में॥

सब कुञ्ज किसलय डाल बल्ली, प्रेत-से अब दीखते
बैठे विहङ्गम चुञ्च खोले सुखद जल को हेरते।
तजकर कुरङ्ग तृणादि चरना हाँपते हैं ओट में
अति क्षान्त कृषक सभी फिरे हैं, क्लान्त हो कर खेत में॥

दूर्वास ऋषि का कोप यह क्या, गाधिसून विरोध क्या
कौरव सभा की द्रौपदी का यह विलाप-कलाप क्या।
निश्शस्त्र उस सौभद्र-मर्दन का प्रदर्शन तो नहीं
क्या कह करूँ तै ऊषमा की शब्द स्पृहता जब नहीं॥

झट ले रजाइस जैल के सब टूट गोपन पर पड़े
मध्याह्न की विकराल वेला, श्रमित जग-जन थे पड़े।
"ऊँ आँ" किया भी नहिं जती ने, दण्ड भारी था बड़ा
मैदान रेतीला उसी पर जा .खुशी से था खड़ा॥

वाहवा भला वह राम-महिमा, हो सतत जय राम की
तब बदल कर रेती हुई थी सेज कमल महान की॥
"यह है हमारा, अन्य वह तो, यों न बोलो जगत में
श्रीराम हम से अन्य नहिं, हम राम के संसार में॥

सो ॥ "राम राम कह नित्य, तरते जग के लोग सब ॥
कथन सदा यह सत्य, ऋषि मुनि कहते निगम सब ॥

मन्दा ॥ "आओ प्यारे तरनि-कुलके देखना है तुम्हीं को
माधौ ! बोलूँ अवनिप तुम्हीं भक्त बोले तुम्हीं को ।
स्वामी जी की भक्ति मन में हो, यही आस मेरी
आभा तेरी जन-पति लखूँ, नाश हो भ्रान्ति मेरी ॥

दो ॥ "सर्व-रोग संजीवि है, भव-भय हारी नाम ।
शत्रु-विजय-क्षय, सुखद गति, परंधाम श्रीराम ॥

हरि ॥ "मैंने परिश्रम-तण्डुलों से, भक्ति-अन्न बना दिया
है वह भरा शुभ शब्दरस से, गीत भाजन में, नया ।
उसको ग्रहण प्रभु प्रेम से कर, मुक्त मुझ को कीजिये
कितने तरे प्रभु-चरण-आश्रित बन, उसी विधि लीजिये "॥

दों ॥ जैल-खान में मोद से, प्रभु की आरति दिव्य—
दी गोपनने, जान कर कि सबों से वे दिव्य ॥

"बोलो" बोले दासगण, "महिमा अमित महान-
श्रीपति की जगमें सदा, कहते जिसे प्रमाण " ॥

त्रि ॥ "त्रिभुवन-प्रतिपालक, सज्जन-तारक, सुख-निधि-कारक, राम यही
वैदेही-नाहू, गोपन साहू, मुनि-भन-मोहू, राम यही ।

सुगुणों की खानी, अद्भुत-ज्ञानी, अव्यय-मौनी, राम सुनो
जो जगत-प्रकाशी, श्री-मन-वासी, काम-विनाशी, राम सुनो
इस तरह कहा है, निगमों ने ही, बन्दी-स्नेही सन्त सुनो ॥

मन्दा ॥ "बन्दी जानो सुदिन वह है, राम पूजा मनाते
अर्थापेक्षा, सुदिन वह है, चित्त में जो न लाते ।
दैत्याराती, सुदिन वह है, फूल लेते सबों से
बाजे गूँजे, सुदिन वह है, तालरागादियों से ॥

"पूजा होवे, सुदिन वह है, स्वर्णपुष्पादियों से
गोपी ढोटा, सुदित वह है, हर्षते मोद ही से ।
राधा-लोला हरिजन पती, पूर्ण हो आस मेरी
सेवा से ही, जति-ऋषि तरे, पूर्ण हो आस मेरी ॥

दो ॥ "राम तत्व इतना सुनो, राम एक पर-देव ।
वर्णन उनका यों करो, सुखदाता सुखदेव ॥

विधाता ॥ "लखूँ में मोहिनी मूरत, पियारे श्याम की नीली ॥ ध्रुव ॥
अहो मैं राम को देखूँ जयिल के श्याम को देखूँ ।
करी के आप थे त्राता पियारे श्याम को देखूँ ॥ लखूँ में ॥
गठीले-बदन वाले हैं सुटीका भक्त-मन भाता ।
सुरों की सुमन मालायें लुभातीं विरत मुनि ज्ञाता ॥ लखूँ में ॥
अरे ! चालाक बाजीगर, चलाओ खेलपोचों से ।
विपत्ती में पड़ा चेला, बचाओ दान्त पोचों से ॥ लखूँ में ॥

मन्दा॥ "बाबा भाता किस विधि तुम्हें, स्वर्ग का सौख्य बोलो!
शाही बन्दी प्रतिदिन मुझे, मारते हैं सँभालो।
आखों से तो झर झर बही, अश्रुधारा दयालू
आर्त्तों के क्या तुम पति नहीं, स्वर्ग-वासी कृपालू"॥

हरि॥ सरकार से कहने लगा तब, बन्दियों का एक यों
"हरकार को अपना लिया है, गोपनाने बोल यों—
'सब जीव एक जहाँन में हैं, देव सब का एक ही'"
"हाँ सच, नहीं इसमें कमी भी दोष" बोला शाह ही॥

"पर नहिं नहीं सरकार यों तो, राज्य पालन कठिन है"
अति कुपित नरपति सुन बने यह, "गोपना गोपाल है"
बोला "उन्हीं से मुक्ति सब की यह रहस्य बडा घना
तुम तैल में उसको डुबाओ, गरम कर निर्भय-मना॥"

पाकर रजाइश जैल में वह आगया करने तदा
जब वस्तु-चय संचित हुआ तब, गोपना को कर जुदा-
अत्युष्ण-तैल-समृद्ध-भाजन में डुबाया दास को
उस में प्रथम से ही परात्पर (दक्ष-रक्षक) चक्र को-

कर में लिये बैठे कृपा-निधि दास-रक्षण केलिये
यह कौन जग में जान सकता मनुज जब मोहित हुए।
सहसा सबोंने यों विचारा अन्त है उनका हुआ
पर कुशल उनको देख उसमें आशु सबको सुख हुआ॥

मन्दा॥ "चरणों की ही शरण मुझको पद्म का दिव्य जोडा
मैंने पूरे जगत सुख को, सान्त छोड़ा, बखेडा
सेवा से ही ऋषि-मुनि तरे, दास मैं भी तरूँगा ?
शंका मेरे हृदय-तल में ही उगी क्या तरूँगा ?॥

शा॥ "हे! पुंसा, मन-मोहका, जगत के एकैक आदर्श हो!
दैत्योन्मूलक, देवकी-सुअन हो! देवादि के दिव्य हो!
केली-लोल भवाँड-कुंभ सुरपा भक्तारती लो प्रभू।
रामं तत्वमसीतिवाक्य जनकं, रोऊँ कहाँ तक विभू॥

शा॥ "खायी लोकप आपने बिहंसते मिट्टी निरे बाल्य में
माता संशय ग्रस्त हो पिघलती बोली 'लखूँ आस्य में'।
खोला आनन तो लखा, जगत का सारा, भरे मोद में
लीला वर्णन कौन क्या कर सका, ब्रह्माण्ड की भित्ति में॥"

दो॥ जब उत्तर श्रीराम से, प्राप्त हुआ नहिं, दास –
माता जी से यों कहा, "माँ! है पुत्र उदास॥

हरि॥ "अपराध मैंने क्या किया है जननि-माता-जानकी
राजीव-पद पकडा हुआ है, दास-गोपन नारकी।
श्रीलक्ष्मि गूँजरियाँ अनेकों, दी अभागा दास ने
फिर गुलिक मालायें अनेकों दी भिखारी दास ने॥

"जो हो वृथा अब सोचना है, धर्म्म माता का यही-
जोऋण हुआ है पुत्र से सो, झट चुकाना है सही।

पदि यह नहीं बनता सहज से, तो उतारो राम से-
कैंकर्य कर जो कुछ दिया है, मुदित मैंने भक्ति से ॥"

दो ॥ यद्यपि बोला गोपना होकर क्रुद्ध अपार ।
तदपि हुआ दर्शन नहीं, बढ़ने लगा विचार ॥

हरि ॥ "बुध-मुनि कथित प्रेमार्द्र मन क्या, बन गया पाषाण-सा !
कितने दफ़े मैंने पुकारा बन गया क्या मूक-सा !
ज्यों कामधेनु-सुकल्पतरुने इष्ट काम हमें दिये
देते हुए थे चरण-युग ही कुपित मुझ पर क्यों हुए ॥

"भजने तुम्हें भ्रमवश जगत में, रावणानुज मैं नहीं
नामस्मरण से तृप्त रहने, शंभु भोले मैं नहीं ।
नित गीत गाकर मुदित रहने मैं नहीं नारद कभी
झिडकी व घुडकी मान लडने मैं नहीं अर्जुन कभी ॥

"निज पुत्र-प्रेम-ग्रस्त होकर मर गया दशरथ कहीं
अति क्षान्त हो कर कष्ट झेले चन्द्रमति-पति ने कहीं ।
श्रीकृष्ण भगिनी शुभग राज्ञी द्रौपदी रोयी कभी
पर उऋण जबतक नहिं बनूँगा छोड़ता नहिं पद कभी ॥

"योंही रुलाकर मौज करना ही तुम्हारा लक्ष्य हो
तो लो ! हमारी माँ तुम्हारे बगल बैठी खिन्न हो ।

छी छी तुम्हारा ध्यान करना बेवकूफी है बड़ी।
तुमने रुलाया पत्नि को भी यन्त्रणा से ही कड़ी॥

शा॥ "माता जानकि दास की दुरगती सोचो न जाता कहा
मैं ने ही उनको दिया मुदित हो, छे लाख रुप्ये महा।
माँ पर्यंक चढ़ा बड़े चँवर से, दोगी हवा नाथ को
हास्यालाप करो बहे प्रभु तभी बोलो कड़े कष्ट को॥

शा॥ "पौढ़े राम पलंग पै बगल में, खोओ न, वेला वही
प्रेमावेग, अनन्त ही सदय हो, बातें करेंगे सही।
भक्तों का सिर-भूष हस्थ महमा, राखें कपोलादि पै
बेला है वह ही, कहो त्वरित हो, रक्षा करो काल पै॥

शा॥ "माता-जानकि यों कहो 'भगत तो, मेरा तुम्हारा सुनो
श्रीपा आप पिता उन्हें जगत में, रक्षा करो, या सुनो-
प्यारा है वह पुत्र, नाथ! मुझको, मैं हूँ तुम्हारी प्रिया
रोता है वह जैल में जब, मुझे माता न कोई नया॥

शा॥ "सोचो नाथ सुपत्र जैल-गृह में रोता पड़ा है अहा
मेरा चित्त नहीं नहीं, अब चला है पुत्र के पास, हा!
भक्तों को तुम जानकी-सुअन ही जानो सदा मोक्षदा
माता भद्रगिरीश-पुण्य-प्रतिमा, माता कहो तो तदा"॥

हरि॥ नव रत्न खचित प्रदीप्त आसन पर विराजे राम थे
वामाङ्क बैठी लोकमाता अनुज दोनों तरफ थे।

पद-कमल निज-कर में सजाकर भक्ति-रत हनुमान था
ऋषि योगि बैठे दिव्य दरशन केलिये यों दृश्य था ॥

उस समय उनका जानकी का शुभग माथा हेतु क्या
इसको निहारा रामने तब यों कहा "क्यों हे प्रिया।
शायद हमारा पुत्र दुःख से जैल में रोता हुआ
असमर्थ मुझ को ही समझ कर है तुम्हारा ही हुआ" ॥

यों आप सम्बोधित हुई जब राम से तब सत्वरा
वामाङ्क उनका छोड उतरी, स्वयम आसन से त्वरा।
दुःखार्त्त का दुःख दूर करते चरण जो पकडा उन्हें
बोली बहाती अश्रुधारा "नाथ अपना लो उन्हें ॥

शा ॥ "नाथा प्राणपती लखो चरण में है आरती एक ही
भक्तापायभुजङ्गगारुडमणी है भक्त मेरा वही।
पाला था गजने किया जब विनै, शंखादि भूले हुए
भक्तों के प्रति पारिजात जगमें सोचो कहाँ के हुए ॥

शा ॥ "रोता जैल-निवास नित्य करता, नाथा! पडा है वहाँ
तोभी चित्त कभी नहीं पिघलता, रोना उसे हो वहाँ-
तो मेरे वश में नहीं समुझिये ये प्राण, जो दास के
माता का यह भाव ही सहन है, सोचो अभी हो सके ॥

शा ॥ "बोलो नाथ! नहीं नहीं ठहरते, बच्चा बुलाता वहाँ
बोले 'आप समर्थ' वेद इतना जाओ दयालू वहाँ।

जाते आप नहीं, विषाद मनसे जो मैं गयी तो अभी
बोलेंगे सब अन्यथा, कुछ सुनो, जाओ दयालू अभी" ॥

व॥ ति॥ "प्राण प्रिये, प्रिय-सखी, कहती भली है
कारागृहान्तर पड़े वह शोक में है ॥
गोपन्न है गुण-निधी, जग के जनों में ।
नीचे पड़े जयिल में, बहता प्रमा में ॥
है भक्ति के सुमन को, चरणों चढ़ाता ।
श्री-नाथ से थक गया, कह 'नाथ! त्राता' ॥
जो है किया प्रथम में, वह भोगना है ।
अच्छे अभी दिवस हैं, वह मुक्त भी है" ॥

त्रि॥ मधु-मय प्रिय-वचनी, जब पहिचानी, लीला जानी मुदित हुई
लछमन से गंगा में धनु-भंगी कर अभ्यंगा मुदित हुए ।
निज तनु को रंगा, चकित अनंगा, श्री-मुख-भृंगा, रम्य बने
नौकर सम जोडी, जग-खेलाडी हँस निकले झट द्रवित बने ॥

हरि॥ पतलून पहिना अनुज दोनों को सजाया मोद से
नवकर प्रभू के चरण युग में, आप बोली मोद से ।
"भोला बड़ा ही गोपना है आप सजग रहें सदा
अति तप्त वह लख आपको झट भ्रान्त होगा, मोक्षदा!
उद्भ्रान्त जब जन आप बनता प्राण भी जाते कभी
देखो सबों के हृदय-दर्शी! वह न पावे दुःख कभी ।

है सेविका की प्रार्थना यह पुत्र-प्राण-हितैषिणी
तुम अब विलम्ब न कर चलो झट, भक्त के जीवन-धनी ॥

सन्ध्या हुई फिर रात बढ़ने थी लगी· तब वे दुके-
भूपाल के शाही-गृहों में रवि जहाँ नहिं जा सके ।
सब देखते हैं जो वहाँ के नहिं कहीं 'रुक जा' वहाँ
'तुम मित्र हो वा शत्रु हो' यह भी नहीं कहते वहाँ ! ॥

यों पहुँचकर प्रभु-भवन में तब, हँस पड़े निज अनुज से
वह मुस्कुराहट भी भरी थी, लोक माया जाल से ।
लखकर पड़े निश्चिन्त होकर नौकरों के सब वहाँ
तब खट खटा प्रभु ने बुलाया "खोलिये शाहेजहाँ" ॥

इस समय गोपन की प्रवाहित अश्रुधारा थी वहाँ
थक जब गया था बचन अति कटु बोल बैठा धूर्त हाँ
जो नाथ निशि तक में न आये तो मरा गोपत्र लो
यों कह धरा विष बगल में ही दाम का वह धैर्य लो ॥

उस समय पर ही शाहने भी स्वप्न देखा था वहाँ
चञ्चलित मन का हो जगाया पत्नि को, जो थीं वहाँ
(यह घड़बड़ी ही देखने को नाथ शान्त रहे वहाँ)
"हे ! पत्नि आये राम-लखमन' अनुज दोनों .खुश यहाँ

"कहते सुना वे अर्क कुल के, गोपना के दाम भी
छे लाख रुपये साथ लाये यह कहीं सम्भव कभी !
मुझसे उन्होंने प्राप्त-पाती मुदित माँगी थी तभी
.खुश लिख दिया फ़रमान उनको भग चले दोनों तभी ॥

"अब हृदय मेरा शान्त है नहिं हेतु-फल बोलो प्रिया !"
"क्या कह सकूँगी राम-लखमन ! मन हमारा भी गया ।
श्रीराम दर्शन लभ्य नहिं यों बोलते हिन्दू यहाँ
यों तर गये इस जन्म में हम, भाग्य मेरा ही न ? हाँ !" ॥

ईन्द्र ॥ "सर्कार खोलो दरवाज़ भारी
आये हुए हैं नर-देह-धारी ।
भूपाल लीजो पुन-पुष्प फूला
दर्वाज़ खोलो तब लो नृपाला ॥ "

(दो ॥ "बीबी बोलो कौन ये, राम-लखन तो नाहिं
जो हो भय होता मुझे, मन तन में तो नाहिं ।"
"मैं भी वैसी हूँ प्रभू, घोर रात का वक्त
चोर कहीं के प्रिय पती, मुझको भी अव्यक्त ॥")

ईन्द्र ॥ "आर्षार्थ के ही हम लक्ष्य राजा
क्यों ख़ौफ़ खाते हम दास राजा ।
रात्री गयी है अब पौ फटेगी ।
क्यों भीति भारी अब ना मिटेगी ॥"

दो॥ "पहरेदार हुशार हो, आये हैं नर अन्य"।
कह खोला दरवाज़ को, लखा अनर्घ्यानन्य॥

हरि॥ दोनों ढुके तब मोद से फिर जा खड़े नृप निकट ही
अदृश्य मुनि-मन-दृश्य को लख आप सजग हुए सही।
मृदु देह, कोमल अंग सारा, अधर किसलय-से रहे
स्थिर अध-खिले श्री नैन-शोभा, जानु तक कर-युग रहे॥

वे कमल-से दोनों चरण थे शान्त मूरति स्फुटित थी
ऋषि मुनि जनों की मोहिनी-सी, मुस्कुराहट प्रगट थी।
वह वक्ष-स्थल चौड़ा बड़ा था, अमित भक्त-निवास जो
कितने मरे ! सूखे! वनों में दर्श-हित सहसा भजो।
यों प्रेरणा नरपाल के मन आप से ही जब हुई।
तब भावनायें भी अनेकों राम के प्रति थीं हुई॥

तो॥ शत सूरज-कान्ति विचित्र घना
शशि-जोड मुखं मन में अपना
तिलकादि सुसोभित वारे वहा !
मणि के शुभ कुण्डल-कान्ति अहा॥

मृदु गाल गुलाब समान लसा
कल-कण्ठ सुकम्बु समान लसा।
युग बाँह विशाल पहाड़ नहीं
जग के प्रति पालक मान्य कहीं॥

जयमाल सुहार सुशोभित-सी।
ख़ुश चूम रहीं प्रभु-नाभि कसी॥

अधखोल लखा प्रभुने नृप को।
बरसा पुन-वारि मिला किसको॥

नृपने यह बोल लखी धरती
बहु रत्न पड़े यह क्या? धरती?॥

दो॥ धरती पर धन रतन बहु मोहन रूप समक्ष।
धन को लो या रूप को, "सहसा लो मृदु-पक्ष"॥

भुजंगी॥ "कहाँ के निवासी सुवासी कहो।
यहाँ ख़ौफ़ की बात नाहीं कहो।
यहाँ अर्क भी नाहिं आया कभी
दुके शान्त कैसे कहो जो अभी॥

इन्द्र॥ ये भार भारी किस भाँति लाये
हाथी वृथा है तुमने दुलाये।
शोभा बढ़ी है कहिये कहाँ के"
बोले कृपालू "सब प्राणियों के॥

इन्द्र॥ "भद्रादरी के हम हैं निवासी
जिस्के निवासी अब जैलवासी।
आदित्य जाती सब जानते हैं
भद्रादरी के हित बोलते हैं॥

इन्द्र ॥ "गोपन्न की बात हमें सतातीं
चूँकी गुलामी उनकी बना ली।
संवाद ये तो किस काम के हैं
कर्त्तव्य मेरा अब पूर्ण ही है॥

इन्द्र ॥ "सोचा नहीं है तुमने अगाड़ी
भोले बने हो यह भूल गाढ़ी
'पाती' मुझे दो सब वित्त लीजो
गोपन्न जी को झट मुक्त कीजो ॥

बोला नहीं क्या? तड़के रवाना।
देरी न कीजो यह लो ख़ज़ाना॥

हरि ॥ यों स्वीय गाथा पूर्ण करके मौन श्रीपति थे वहाँ
पर शाह के मन में नहीं थी शान्ति, बोले यों वहाँ।
"अब तृप्त मेरा मन नहीं है आप कृपया यों 'करें'
मैं प्रश्न पूछूँ आप उत्तर दें नृपति मन .खुश करें॥"

जिस भाँति प्रेमी प्रेमिनी की बात सुनना चाहता
अस्पष्ट-भाषी पुत्र की ही बात माता चाहती।
त्यों भक्त रघुपति-शब्द-श्रेणी नित्य सुनना चाहता
उस तृप्त 'पाशा' का हृदय पति-वचन-पीना चाहता॥

त्रि ॥ कहाँ के निवासी कहाँ से चले,
इन्द्र ॥ गोदावरी के भदराद्रि ही से

कहाँ स्वामि. नीले ! तुम्हारे भले,
गोपन्न जी ही निज स्वामि भासे
उन्होंने रवाना तुम्हें क्यों किया
कर्जा चुकाना नृप का अभी है
कहो जाति. भूषा उन्होंने दिया
आदित्य जाती. जनने दिया है ॥

इन्द्र ॥ "क्या नाम, दोनों किस नेम के हैं"
"रामोजि लम्मो, अद्वैत के हैं"।
"कितने दिनों से उस दास के हैं"
"दादा पितामः-चिरकाल-के हैं" ॥

इन्द्र ॥ "क्या वित्त पूरा तुम दे सकोगे" ?
"पूरा व दूना हम दे सकेंगे"।
"मग्र बातें तुम लोग छोड़ो"
"गोपन्न को तो तुम जल्द छोड़ो" ॥
पैसे दिये तो हम क्यों न छोड़ें
पैसे दिये हैं हम को न छेड़ें ॥

हरि ॥ झट हाथ में ली कलम नृपने, पत्र लिखने वे लगे
लिखते नहीं बनता, निकट का रूप लखने जब लगे।
ज्यों भ्रान्त नर नित घूरता है, चित्र वस्तु सुयोग को
हरबार पाशा देखता ही था, मनोरम राम को ॥

वह रूप बेहद .खूबसूरत था, जहाँ के 'सर्व' में
आसन दिलाने नृप हृदय में, थी हुई आसा. नमें।
सब हृदय वासी राम को तो, शीघ्र जाना मान्य था
यद्यपि विचारा गन्ध-लेपन शाहने. प्रभु अन्य था॥

नृपने विचारा 'पतित-पावन'. नाथ ने 'यह भक्त है
यों प्राप्त-पाती पूर्ण भीरे होगयी. एतबार है।
छः लाख दे कर वे गये थे राम लखन रसीद ले
निज-वेष बदल दिया प्रभुने महिप-मन्त्री-से चले'॥

कितना निहोरा, प्रण को भी कर दिया अर्पण प्रभो
नस नस तुम्हारे रूप को ही भर दिया गोपी विभो।
भक्तार्त्ति भंजन तुम कहाँ के, रोर मेरी मच गयी
तुम दीन-पालक नहिं किसी के. दास. पर वश खोगया॥

शा॥ पापी हो तुम आर्त्तरक्षक नहीं पाषाण से हो बने
प्रह्लादादि न जानता किस विधी भक्तालि में से बने।
ब्रह्मा शम्भु सदा तुम्हें सिर चढ़ा हा! पूजते क्यों वृथा
गोपीने तुमसे किया प्रणय क्यों, लक्ष्मी तुम्हारी वृथा॥

शा॥ खोटा क्यों नहिं पुत्र हो, फिर पिता छाती बढ़ाता सदा
खोटा क्यों नहिं नाथ हो. फिर सती छाती लगाती सदा।
यों ही जान विचित्र-सा प्रणय है, जो राम में लुप्त है
उन्को मैं किस भाँति रक्षक कहूँ खोटा बड़ा तृप्त है॥

हरि ॥ इस तरह खोटी औ खरी कह दास मूर्च्छा से गिरा
कुछ समय बीता, जब मिली सुधि, खूब पछताया निरा।
कर-कमल दोनों को मिलाकर प्रभु पदों में गिर पड़ा
"कोपाग्नि-भभकन में हुआ जो दोष माफ़ करो बड़ा ॥

दो ॥ आन सीय पर लखन पर, जदि तुम तजो गुपन्न
जानो सद्गति मी गयी· जदि तुम तजो गुपन्न ॥

हरि ॥ "नहिं क्रोध की इस में कभी भी बात रखने आन में
जब मुक्ति जग में प्राप्त होगी, भगति बढ़ती आन में।
कारागृहान्तरवास कबतक, जगति-ज्योति नहीं मुझे ?
मेरे तुम्हीं माता-पिता हो, अन्य कौन यहाँ मुझे "

चौ " देखूँ कामित-फलद श्रीकान्ता, सललित-सिंहासन-मन-शान्ता
भव फिर अभव तुम्हारे साँचा, क्यों न दूँ तुम्हें मानस-माँचा
आदित्यार्चुत अतिशय रासू, नाम स्मरण से तरूँ निकामू
पाँव पकड़ने आस हुई है, कर्म बदलता आशु नहीं है
तुलसीदल-माला-आभूषण, दुर्जन शोषण सज्जन पोषण
तापस-वेष तरनि-कुल-भूषा देखता रहूँ मञ्जुल वेषा
भद्राचल-वासी परकासी, गोपन के मन रहो विभासी
नयन पन्थ ऐंचूँ रघु-मूरति, बाँधूँ प्रेम डोर से सूरति
भक्ति पुष्प की आनन्दारति, गोपन साधे मन्दिर मूरति ॥

हरि ॥ दश-इन्द्रियों को बाँध करके योग में डूबे रहे
सब काम शारीरिक गुपन्ना के, वहाँ बन्धित रहे।

ज्यों सन्त मुनि-मन-मोहकों से, आप स्थिर रहता सदा
त्यों राम रूप विशाल सागर में बहा स्थिर हो तदा ॥

उस जैल के चपरासिगण सब देख यह सन्ना गये'
सोचा किसी ने 'गोपना ने प्राण छोड़े, मर गये'।
फ़िर दूसरेने यों विचारा 'यह बिचारा! थक गया'
तब तीसरा बोला 'नहीं मन में बिचारा खप गया' ॥

जब बहस यों होती रही थी मूर्च्छा टूटी वहाँ
अति निकट रक्खे अन्न से विष को बना के यों कहा।
"जो सूर्य-दर्शन से प्रथम ही सूर्य-कुल-अवतंस के—
मैंने न पाया सुदरशन को प्राण छूटे देह के" ॥

जब कठिनता से कठिन जो प्रण, आपने सहसा किया
तब रोम पुलकित हो खड़े झट, आगमन करने नया।
उस अमित परवश में डुबोकर देह को, सुधि खो गया
धोती व चद्दर भी गिरी, फिर नाचता, सुधि खो गया ॥

गीत॥ बिनु राम दरशन के, शांती नहीं है
जप जोग साधन की, नाहीं ज़रूरत।
पैसे का .खरचा भी ज्यादा नहीं है॥ ध्रुव॥
श्रीराम गोपन्न है जैल-वासी
नामावली नित्य जिहूवा प्रकाशी॥ बिनु॥
मोती जवाहीर रक्खा कहाँ जू
शान्ती मिली सदन किस भाँती राजू॥ बिनु॥

जग की सुमाता जी सीता कहाँ हैं
भाई सुलछमन जी सोते कहाँ हैं ॥ बिनु राम ॥
शय्या बडा दुष्ट मैंने विचारा
भारी जवाहीर उठने न देते ॥ बिनु राम ॥
भूखों जगत-वासि मरते सदा हैं
भद्राद्रि के राम नमो नमस्ते ॥ बिनु राम ॥

दो ॥ सुधि-बुधि चुप थी देह में, गोपन थे बेहोश
राम लखन हँसते वहाँ आ पहुँचे सन्तोश ॥

हरि ॥ गोपन्न को श्रीपाल ने तो अधखिले युग-नयन से-
देखा, विचारा, सिर हिलाया, लखन थे जब मुग्ध-से।
गंगा भयंकर प्रलयकारी, शम्भु के सिर से बही
श्रीरामचन्द्रोत्पल सुचक्षू से पुनः सहसा बही ॥

विपरीत सर के कूल पर गज-राज फिरता था बड़ा
शैल्याकृती चञ्चल पहाड़ों को जताता था बडा।
सन्निहित गुन-गुन रोर करती थी वहाँ करिनी बड़ी
हर नस भरी थी मोह से भर-सनक से जो थी कड़ी ॥

निज समय पाकर अर्क ने भी दब-दबा जारी किया
जब कमलने निज कमलिनी से बतकही छेडी नयी
युग हाथ फैला ताप ने तब घेर दोनों को लिया।
सन्तप्त अतिथी मार-शर से सलिल में तनु खो गया ॥

उस तरह करि करिनी सलिल में थे प्रफुल्लित मत्त-से
शिव-सुख-विघातक-मदन-सा अरि मकर ने अति कोप से।
गजराज पाद-ग्रहण कर जब खींचने जलमें लगा
अपना लिया प्रभुने .खुशी से, देखने वह प्रभु लगा॥

निज पत्नि को ही अनुज के जो हस्तगत कर भगचला
निज राज्य-श्री, सब को छुडाकर, जंगली बन भगचला।
उस आर्त्त की पीडा छुड़ाकर, जिस प्रभूने सुख दिया
उसने बहाई अश्रुधारा देख जग का यह किया॥

उस समय दोनों नरप-मन्त्री के समान वहाँ रहे
तडके वहाँ क्यों शाह आये बहस सब करते रहे।
ढिग लखन को बुलवा प्रभूने यों कहा "भक्ती यही
निगमादियों में मुनि जनों ने सर्वदा इतनी कही" ॥

फिर दास के प्रति मोड कर मुख, बोलने सहसा लगे
"हे पुन्य-पूरुष! विरक्तसत्तम सोचने अब क्यों लगे।
कुछ देर से हम इन्तज़ारी में खड़े बेहाल हैं
निज नयन खोलो योगि-सत्तम! भय तजो गोपाल हैं" ॥

था एक प्याला विष भरा ढिग, हेतु जाना रामने
मृदु मुस्कुराहट प्रगट करके विष ढुलाया रामने।
कोमल सुरीले राम-प्रभु ने मूर्च्छा तोड़ी तभी
"श्रीनाथ शरणागत कृपालू, कह नयन खोला तभी" ॥

अति दिव्य मंगल रूप को जब गोपनाने सामने-
देखा खड़े वह हँस रहा है 'दिव्य' सोचा दासने।
पर शाह के इस रूप में यह दिव्य आभा तो कहाँ
वह मोहिनी मूरत सुरीला कण्ठरव अद्भुत महा ॥

इस तरह मोहित गोपना जब सोचने मन में लगा
सब भाव ताड़ लिये प्रभूने बोलने सहसा लगा।
"क्यों आप जनक-विदेह के सम ताकते हैं एकटकी
यह रूप परिचित रूप ही है क्यों लगाते टकटकी" ॥

अब चित्र परमाश्चर्य की तो एक ही घटना हुई
ब्रह्माण्ड-माता जनक-नन्दिनि आप बीबी बन गई।
दरबान ने कृत्रिम नरप से "आप अम्मा आगयीं
आज्ञा मिली तो जैल-खाने में—यहाँ आही गयीं" ॥

"मुझको न आज्ञा की ज़रूरत दूर हो दरबान जी"
कह लोक माता लोक पति के निकट पहुँची ज्यों सजी।
फिर नरप-मन्त्री-राज्ञि इनमें गुफ्तगू होने लगी
कुछ समय बीता प्रगट में नृप बोलने सहसा लगा ॥

सरसी ॥ "गुनगुन नादें गूँज उठी हैं सजग हुए सब लोग
तीन चार बातें हैं कहने सब कुछ कहूँ सवेग।
आप बड़े ही भक्त जगत के यह नहिं कमी प्रशम
बाकी जो कुछ खाते में थी चुकी कभी मम-हंस ॥

"था मैं चहता तुम्हें देखना पूरा हुआ संकल्प
अब जब आगे काम पड़ेगा बोलूँगा संकल्प" ।
इतना कह बीबी के जरिये दे दी उन्हें रसीद
हाथ बढ़ा ली, आँख राम पर "इस में होगा भेद" ॥

हरि॥ इस तरह देकर गोपना के हाथ में फ़रमान को
निज राह पकड़ी रामने तब संभले स्त्री अनुज को ।
जब रामने शाही-महल को छोड़ .खुश सहसा दिया-
था अल्प समय बचा, उदय के चारु होने में दिया ॥

ऋषि मुनि जनोंने श्वास छोड़े अवश तप में लग गये
लोकापवादत्रस्त सुखजन निज गृहोन्मुख बन गये ।
अप्राकृतिक-सा सनसनी से रूप निज का भर हवा
अधविकसितोत्पल के परागों की सुगंधी से हवा-
अपने प्रभावोद्रेक से शुभ प्रोत्साहन दे गयी
पूरब दिशा में सुनहली-सी एक साड़ी बिछ गयी
उपरान्त घूँघट कुछ निकाले झाँकने ऊषा लगी
अध-मुहँ दिखाये अर्क धीरे हाज़री देने लगा ॥

शुक चक्रवाकी फड़फड़ा कर मोद दिखलाने लगे
निजवास छोड़े चुञ्च खोले विहँग शोरमचा भगे ।
जिस तरह वैरी बैठ जाते देखकर बलवान को
त्यों दीप ज्योति मलीन सहसा होगयी लख अर्क को ॥

बाजे बजे नृप-सदन में भी भाट चिल्लाने लगे
वह नगर पूरा था हरासा अतिथि यों कहने लगे।
तड़के उठे सब काम पूरा जो किया करते रहे
वे शाह अबतक दीखते ही थे नहीं हम क्या कहें ॥

उस विस्तृताकृति के महल में एक कोठी थी बड़ी
'उस में न कोई जासकेगा' शाह की आज्ञा कड़ी।
निज कान में कर को घुमाये कौन पढ़ते हैं दुआ
"अल्ला .खुदा इल्लिल्लाहो कुल जुदा मेरा हुआ ॥

"फिर आप एक हरेक मत में लीजिये सहसा मुझे
जो कुछ हुआ अनजान मेरे हाथ से, क्षमियो मुझे।
चाहे कहें अल्ला नहीं तो रामचन्द्र जनार्दना
फिर एक ही है लक्ष्य सब का लीजिये मम-प्रार्थना ॥

"मुझको नहीं मालुम हुआ था 'क्यों मतात्मक झंझटें
अब आपके ही दरशनों से दिन हमारे सब कटें"।
दोनों वज़ीर अभी पहूँचे सहज ही दरबार में
पर शाह को पाया नहीं था आपने परिवार में ॥

तब राजनैतिक शास्त्र के ही नियम के अनुसार वे
हर ठौर में शाही महल के खोजते आसक्त वे
उस स्थान पर पहुँचे जहाँ पर राज्ञि राजा मौन थे
जो शुद्ध प्रस्तुत हंस को प्रभु में दिये बहोश थे ॥

तब नरपने निज मन्त्रियों से हाल पूरा कह दिया
सब मिल चले तब जेल में झट काम यह पूरा नया।
जब जैल नौकर ने लखा भूपाल सहसा आगये
दुविधा उगी क्यों नृप दुबारा देखने उत्सुक हुए॥

दो॥ जेलखान में पहुँचकर राजा बोले शान्त।
"आज आपकी ताड़ ली असली बात अनन्त॥

सजल॥ "गोपन्न आपको तो मैंने वृथा सताया।
बारह बरस बिताये मुझको सबक सिखाया॥
मैंने कभी न सोचा तुम भक्त हो बड़े यों।
तड़के मिला प्रभु से जब आपने कहा यों॥
भारत वसुन्धरा में तुमसे न अन्य कोई।
यह पुन्य देश का ही अब आपको रिहाई॥
अपराध जो हुए हैं वे क्षम्य यदपि नाहीं।
फिर मन मिला मुझी से मिलते रहो सदा ही॥
जो सब मिला प्रभु से वाफ़िस दिया गुपन्ना!
कृपया उसे उन्हीं को अर्पण करो सँपन्ना॥
वह मोहना मनोहर जोड़ी बड़ी अनोखी।
जब तक रहे परात्पर मैंने पढ़ी न सीखी॥
अब रो रुला करूँ क्या खोया सु-रत्न कर से।
मुझ को न पादुशाही है चाहिये भगत से॥
यह जगत खोखला है यह देह स्थिर नहीं है।
हो इल्लिलिलाहो यह दास आप का है"॥

हरी ॥ यों कह सुनायी स्वीय गाथा शाह ने गोपन्न से
गोपन्न सुनकर .खुश हुआ था "तर गये सम्पन्न से।
बारह बरस का तप किया है पर नहीं दरशन मुझे
कितने बड़े भागी बने नृप भक्त क्यों कहते मुझे" ॥

कह यों बहायी अश्रुधारा भाग्य को ही कोसता
अक्कन्न मन्त्रीने बताया देख यह ।स्थिति पिघलता।
"हे भक्त-चिन्तामणि महात्मा विप्रवर गुणनिधि बड़े
यद्यपि नरपने दृश्य पाया हेतुभूत तुम्ही बड़े ॥

"जब कर्म्म टूटेगा तभी प्रभु देख पड़ते लोक को
यों दुःख करना ही वृथा है नित्य जपिये राम को।
सद्भाव यह तन में समाये सजग रहता जो यहाँ
निश्शंक वह सद्धाम पाता आप शान्त रहें यहाँ" ॥

आलाप पारस्परिक पूरा हो गया कुछ देर में
अब शाह बोले "वित्त सारा आपका संसार में।
हरसाल भेजूँगा अभी से रूपये मोती सभी
उनसे चलाओ कार्य प्रभु के देखते हम भी कभी" ॥

सम्मोद से युग मन्त्रियों ने शुभ घड़ी भी नियत की
जिस समय गोपन ने तयारी कूच करने शीघ्र की।
अति पूर्व करि की पीठ पर तो एक होदा कस गया
जिस पर सजाया भी गया हर भाँति का .खुश-गुल नया।

कुछ समय में ही ऊँट कितने ही वहाँ लाये गये
सब रुपये प्रभु के दिये भी ऊँट पर लादे गये।
सैनिक समर्थ बड़े सिपाही साथ में रक्खे गये
करि-जोड़-हौदे में विरागी दास बैठाये गये॥

बाजे बजे उस समय सहसा शकुन शुभ गति के हुए
कुछ दूर तक दरबार के सब साथ सहसा थे हुए।
सब पशु नरों से अधिक उत्सुक थे भदारदि पहुँचने
सरसर चलीं सब गाड़ियाँ तब पैदलों को मातने॥

अब दूर ही से भद्र गोपुर देख पड़ने थे लगे
सद्भक्त आनन्दातिशय से सिर झुकाने थे लगे
सज्जन महाजन राह पर के आरती देने लगे
सम्मोद गोपन भक्तिवश हो पूजने प्रभु को लगे॥

जब से गुपन्ना जैल में ही आप रहने थे लगे
उस भद्रगिरि की एक थी स्त्री काम अपनाने लगी।
युवती बड़ी ही नित्य प्रातः काल उठती नियम से
गोदावरी का स्नान पूरा कर निकलती सर कसे॥

मृदु-मधुर-चलनी मत्त-गज-सा, सुखद बोली कीर-सा
भारत युवति-कुल-नय-प्रदर्शक मुक्त टीका रक्त-सा।
कल-मोर का सा कण्ठ नाजुक गाल नरम गुलाब से
आजानु कर युग कमल जैसे धवल दाँत अनार-से॥

भगवान ने बेसुध उन्हीं पर कोमलत्व बहा दिया
पर वक्र मामूली प्रजा के, हृदय विमल बहुत नया।
इन को न देखा है किसीने, दाम के रहते वहाँ
कब आगयी है, कौन यह है, कौन कह सकता वहाँ ? ॥

भजना समाजों में हमेशा आप जाती मोद से
सद्भक्त मण्डल में सदा ही शान्ति पाती शोक से।
हर समय हँसती पर हृदय में आपदायें थीं छिपी
भगवान से नहिं अन्य कोई जानती, बातें छिपीं ॥

सबलोग 'माता' नाम से ही नित्य स्वयम पुकारते
सुन मोद पाती आप ही में सब सुशीला बोलते।
फल-मूल का भोजन नियत है एक बार नहीं सदा।
भू-शयन, तप, शास्त्रादि पढ़ना गुण सुशीला के तदा ॥

प्रति सुदिन, उत्सव दिवस में वह दान देती खूब ही
उस प्रान्त के सब प्रान्तवासी बोलते प्रभुनी वही
यों रोज चलते देखते ही देखते संसार में
अब दास गोपन आ रहे हैं खबर फैली लोक में ॥

सब लोग अब हैं चाहते यों 'देवता' को ले चलें
भक्ताग्रगामी गोपना के लक्ष्य पूरे हो फलें
पर देवता नाम्नी सुशीला आज कल रहतीं कहाँ
वह एक बेटा उस सुशीला का गया कहिये कहाँ? ॥

जब भद्रगिरि के पास गोपन आ पहूँचा तब त्वरा
सब लोग दण्ड प्रणाम करके थे लगे कहने त्वरा।-
"प्रभु ! आप हमको तज गये थे जैल में लाचार हो
उस समय दुविधा झट उगी थी कौन खेवे सजग हो ॥

"भगवान ने सुन अरज़ इनकी एक देवी को यहाँ-
सत्-चिन्तवन से स्वयम भेजा पूजने प्रभु को यहाँ।
जब से विराजीं आप प्रभु की आप करतीं पूजना
कृपया करें झट दूर उनकी हृदय फैली यन्त्रणा ॥

"कितने दफ़े पूछा सबोंने बोलिये माता हमें
'जब तक रहेगा राम मेरा' कह दिया 'डर नहिं हमें'।
"वहवा सुशीला कौन होगी" कह रहा चुप दास भी
सहसा वहाँ की शान्ति टूटी चकित क्यों दर्शक सभी ॥

विपरीत-सा माता 'सुशीला' स्वयम सजकर आ गयीं
था पार्श्व में वह भक्त बच्चा नयन-कान्ति बड़ी नयी।
कर में लिये थी आरती को गन्ध सुखद कपूर की
"हे नाथ, पत्नी सत्यवति है धर्म्म पत्नी आपकी ॥"

ज्यों भक्तवत्सल आश्रितों को देखते ही घेरते
त्यों गोपना ने भी किया था देखते ही देखते।
सुकुटुम्ब के निजवास को, वे रामनाम विचारते-
दृतपद चले श्रीराम भजना कलिये मन भेडते ॥

जब मार्ग पर चलते मुदित थे पुत्र बोला "हे ! पिता-
दर्शन सुदर्शन का करें हम मन मुझे यों बोलता।"
"यह रम्य तेरी भावना है पुत्र वैसे ही करें"
कह यों गुपन्ना धौहरे को पहुँच बोला "स्तुति करें" ॥

"हे राम सुन्दर सुमुख सन्मुख आपका ही गोपना
प्रति निमिष निर्मल नाम तेरा हृदय-थल की ज्योत्सना।
रट रट जपूँ, रौरव तरूँ मैं रामचन्द्र जनार्दना
शुभ नाम तारक, मोद कारक दुख विनाशक पूजना॥

"श्यामल शरीरी, प्रभु विचक्षण, स्वामि गो-स्वामी महा
सुचरित्र सुखद समन्वयाकृति वेदने यों ही कहा।
सुविवेक-निधि के शशि तुम्हीं हो, तिमिर-हर अज्ञान के
शिव-सुख-प्रभा के प्राण तुम हो, भुवन के ओंकार के॥

"अति शान्त चित्र प्रशान्ति मुख की अध खिली आँखें बड़ी
धनु के कमान समान भौंहें शत्रुता भेदक बड़ी।
डील डौल का निष्कपट भाला तिलक चौकड़ डट खड़ी
सद्भक्त श्रेणी की हमेशा हूँ" बताती बतकडी॥

"है जडित केशों की शिखा कटु नियम कीर्ति स्तम्भ सी
आजानु बाहु महा रथी के सर्वअङ्ग गुलाव से
इस मूर्ति का निर्वचन करना कार्य साधारण नहीं
पालो गुपन्ना के कुटुम्बी आपके हैं यह सही॥

दो ॥ अर्चकने गोपन्न को दिया प्रसाद अलभ्य।
लेकर सहसा गोपना तृप्त हुआ मन-मध्य ॥

हरि ॥ बोला गुपन्ना "हे प्रभो सुन दीन दशा में जन-मणी
अति तप्त सद्भक्तालि में हो, दास की गणना, गुणी
यदि जन्म लेना ही पड़े तो भक्त बन कर ही रहूँ
वेदान्त-वेद्य विधान तेरा गम्य नहिं क्यों कर कहूँ ॥

"नहिं स्वर्ग की आशा मुझे है प्रभु पदों में हूँ पडा।
लौकिक विभव की कामना नहिं दीन ही होऊँ बड़ा
हे विश्व-पालक विश्व-चालक विश्व कर्त्ता जै विजै
श्रीराम-मोहन सकल-मोहन असम महिम को विजै" ॥

उस वक्त पुत्र गुपन्न का यों प्रार्थना करने लगा
"हे नन्द नन्दन, नयन अपना, आपके पद में लगा।
यह वत्स गोपन का सदा ही भक्तवत्सल का सुना
प्रभु-चरण से नहिं अन्य मुझ को गोल अपने में गिनो" ॥

तब सत्यवति अपने हृदय में प्रार्थना करने लगी
"बन राम की सहधर्म्मिणी तुम क्या न जग में कर सको
इस विश्व सार को तुम्हीने पातिव्रत्य बता दिया
मैं भक्त की सहधर्म्मिणी हूँ मार्ग मेरा क्या किया" ॥

"सेवा बने अविचल पती की लक्ष्य मेरे वे रहें
हरजन्म में उनकी बनूँ मैं वे बने मेरे रहें।

पतिदेवता नाम्नी सुशीला! शील तुम से प्राप्त हो
इससे न मुझको चाहिये या स्वर्ग की आशा न हो ॥

"करुणा निधान स्वधाम से स्थिर स्वामि-अनुसन्धान हो
यदि रुक गयी पति-टहल में मैं, नरक पाऊँ माँ अहो"।
यों प्रार्थनायें पूर्ण करके सब चले स्वस्थान को
पर शान्ति की ही बात नहिं उस गोपना के हृदय को ॥

सहपत्नि गोपन क्लान्त बैठे एक समय भद्राद्रि में
"आजन्म अर्पण कर दिया है दासने भद्राद्रि में।
यह विश्व सारा है तुम्हारा समझ, सब अर्पण किया
बारह बरस में ने बिताये, जो बना सो सब किया ॥

"फिर आपने दर्शन दिया है शाह को स्वस्थान में
क्या योग्य गोपन शाह सा नहिं आप ही की दृष्टि में"।
"क्यों व्यथित होते आप योंही नाथ मेरे प्राण के
कहते सुनी है पूर्व गाथा शाह की दरबार के ॥

"द्विज कुल हुए पैदा महीपति पूर्व जन्म प्रवेश में
'शतशः कलश अभिषेक से प्रभु-दर्श देते लोक में'
यों सुन किया अभिषेक-सिञ्चन आपने सम्मोद में
जब दर्श होने का रहा तब शान्ति टूटी हृदय में ॥

उस आखरी जल कलश को प्रभु-शीश पर टुकरा दिया
सानन्द प्रभु बोले छिपे ही "विप्र! यह क्या कर दिया।
विश्वास इतना यदि नहीं हो, यवन कुल में जन्म लो"
सिर मीट कर छाती बहा कर विप्र बोला नाथ! लो,

"इस दास की किस विधि बनेगी मुक्ति इहपर लोक की'
सुनकर दयामय ने कहा है मुक्ति इहपर लोक की।
कुछ कारणान्तर वश तुम्हें मैं देख पडता लोक में
तब घोर पाप विलीन होगा सुख मिलेगा चरण में" ॥

"इस कथन के अनुसार उनका जन्म-पाशा का हुआ
'जिसका किया सो भोगता है' जगत यों प्रचलित हुआ!'
सब पद्म अपने प्रिय मधुप को खुद छिपा रस कोश में
सम्पुटित वे होने लगे थे, प्रिय मिला, सन्तोष में ॥

निश्चल विनिर्मल नील जल पर सुनहरी चादर बिछी
आह्वान सन्ध्या का हुआ यों शान्ति भी सहसा बिछी।
आदित्य की सित कान्ति माला सुखद सागर में पड़ी
पोशाक चमकीली सजाकर आशु रजनी आ पड़ी ॥

दोनों उठे निज काम करने सुस्मितानन को लिये
कोई न कह सकता "उन्होंने काम ये ये नहिं किये"
प्रतिरोज जाते घाहरे में पुत्र-पत्नी-संग में
भोजन नहीं करते कभी भी राम यदि नहिं रंग में ॥

ज्यों रोज बढ़ते थे गये त्यों आयु भी बढ़ती गयी
जन-मन-प्रवाहित भक्ति में भी बाढ सहसा आगयी।
थी सत्यवति वैसी भगिनिनी पुत्र वैसा भक्त था
सब के हृदय में भक्ति ही का एक अविरल स्रोत था ॥

शुभ स्वप्न में गोपन्न के प्रभु आप साक्षात्कार हो
बोले "तुम्हारा काम पूरा, स्वर्ग चलने सिद्ध हो।

तत् स्वप्न के अनुसार गोपन हेरता दिन को रहा
यह विषय उनसे दूसरा तो जानता नहिं, सच कहा ॥

अर्धाङ्गि को भी साथ लेकर आप जाना चहते
पर कौन जाने क्या हुवेगा, भक्त तो यों चाहते।
वह समय आही था गया जब भक्त कुछ परवश रहा
भगवान के ही ध्यान में वह मन दिये परवश रहा ॥

पौ फट गयी, रवि गर्व से निज गगन पर चढ़ने लगा
उस सिंह को लख तिमिर-करि भी पर्वतों की दिक भगा।
आनन्द इसका, कमल-फूले खिल खिला कहने लगे
'निज नाथ की दुर्गति विचारी कुमुद भी मूँदे भगे' ॥

ज्यों कृषिक प्रातः काल छाती खोलकर परिकर लिये
जाता परिश्रम हेतु दैनिक, खेत में मन खुश किये।
त्यों-कार्यक्रम-निर्वहण के हित पवन .खुश निकला वहाँ
सब तृप्त शाही चाल में थे, उदय का वर्णन कहाँ ॥

सब लोग अपने काम में झट सरल मन से लग गये
सब धर्म्म अपने पालते हैं प्रभु पदों में मन दिये।
तूफान में भी अटल रहता अद्रि ज्यों त्यों गोपना
पति-चरण में निजमन दिये, था अटल अविचल संपना ॥

अति घोर उनकी है तपस्या प्रभु नहीं सहते कभी
प्रत्येकतः श्री राम चन्दर जो पसीज गये कभी।
भेजा पती ने हंस-रथ को सुखद प्रातः-काल में
कटु ध्यान में लख गोपना को हँस पड़े वे व्यंग में ॥

युग नयन खोले गोपनाने रथ, लखा सन्मुख बड़ा
सो बात सहसा याद आयी स्वयम उठ हँसता खड़ा।
"हे सत्यवति क्या कर रही हो पाप टूटा जल्द आ"
इस तरह का शुभ शब्द उसके वदन से प्रगटित हुआ॥

कुछ काम में थी वह लगी तब लौटते आलस हुआ
पर भक्त हँस-रथ पर चढ़े थे, गमन गाडी का हुआ।
सिर पीटने से फायदा क्या पत्नि मूर्च्छित हो गिरी
आलय पहूँचे गोपना भी जल्द चढ़ कर वह गिरी॥

भीतर गये भगवान में वे ऐक्य सहसा हो गये
जो साथ दौड़े थे सबों को श्याम ने दर्शन दिये
यों ऐक्य होने का विषय सब जान, लौटे शान्त हो
उस समय प्रभुने सत्यवति को कह सुनाया प्रगट हो॥

"माता तुम्हारे हेतु मेरे स्वर्ग के मारग सदा
सच जानिये, हैं नित खुले ही आपका ही मैं सदा।
वह पुत्र जब होगा बड़ा तब स्मरण मेरा .खुश करें"
निज स्वर्ग में लूँगा .खुशी से विबुध शुभगति ही करें॥

दो॥ शान्त यों किया राम ने पत्नी अब है शान्त
भद्रगिरी के भक्त सब शान्त हुए, उद्भ्रान्त॥

गोपन की गाथा पढ़ो पावो प्रभु गोपाल।
नाम उन्हीं का लोक में भव-तरणी भू-पाल॥

श्री रामचन्द्र परब्रह्मणेनमः

छापे की भूलें तथा - सुधार

पृ : पृष्ठ । प/पं = पद्य की संख्या तथा पद्य में पंक्ति की संख्या।
अ= अशुद्ध । शु = शुद्ध ।

भद्राचल - गोपन्ना

पृष्ठ.	पं.	अ.	शु.	पृष्ठ.	पं.	अ.	शु.
१	१८	श्रेष्ट	श्रेष्ठ	२	३	आर्थे	आये
२	१	श्रीमन्ना-रायण	श्रीमन्ना-रायणने	२	४	आपनी	अपनी
				२	८	भगवान	भगवन
२	२	आपद	आपदा	२	११	सर्ग	स्वर्ग

राम - दास

पृष्ठ.	प/पं.	अ.	शु.	पृष्ठ.	प/पं	अ.	शु.
३	४/४	असाध्य	असाध्य	२५	४/५	तृटित	त्रुटित
४	४/२	श्मश्रृ	श्मश्रु	२६	४/३	निष्टा	निष्ठा
६	३/४	जान की	जानकी	२६	६/२	सद्भक्त	सद्भक्त
७	५/२	स्थन	स्थान	३०	५/२	माता	माथा
१०	१/१	मात्र	मातृ	३१	३/३	की	का
१२	१/४	प्रजाणि	प्रजालि	३५	१/४	भक्ति-निधि	हैं, भक्ति निधि
,,	२/१	ऊँचनीय	ऊँचनीच	,,	५/१	दृपद	द्रुपद
१३	४/१	चैंदिक	चौंदिक	३६	४/४	सद्भक्त	सद्भक्त
१५	३/५	श्रृति	श्रुति	३६	५/४	काहिये	कहिये
,,	३/६	शतृ	शत्रु	४२	५/१	ज्ञन	ज्ञान
१७	४/४	अश्रृ	अश्रु	४३	१/२	पृथ्वी	पृथ्वी
२१	२/२	दृत	द्रुत	,,	५/३	अश्रृ	अश्रु
२२	२/१	उन	तब				

पृष्ठ.	प/पं.	अ.	शु.
४८	३/३	शाहन	शाहने
,,	३/४	खङ्गों	खड्गों
४९	२/१	प्रर्थना	प्रार्थना
५०	१/१२	जाडूँ	जोडूँ
५०	२/२	ऋतु	ऋतु
५१	१/४	पह्म	पद्म
५२	७/२	भन	मन
५३	३/२	सुदित	सुदिन
,,	३/४	ऋषि	ऋषि
५४	१/३	आखों	आँखों
,,	१/३	अश्रृ	अश्रु
,,	५/२	मुनुज	मनुज
५६	१/१	पदि	यदि
,,	५/४	उऋण	उऋण
५८	१/२	हश्य	दृश्य
,,	३/४	अश्रृ	अश्रु
५९	३/२	अश्यंग	अभ्यंगा
६०	४/१	अश्रृ	अश्रु
६२	२/२	अदश्य	अदृश्य
६६	३/१	प्रण	प्राण

पृष्ठ.	प/पं	अ.	शु.
६७	४/१	श्रीकान्ता	श्री कन्ता
,,	४/३	रासू	रामू
६९	१/३	शय्या	शय्या
,,	३/३	प्रलय- कारी	प्रलय- कारिनि
७०	२/४	अश्रृ	अश्रु
७१	५/३	प्रंशस	प्रशंस
७३	२/१	विस्त्रुत-	विस्तृत-
७५	२/१	अश्रृ	अश्रु
७७	२/३	आपदर्ये	आपदार्ये
७८	५/४	दृत	द्रुत
७९	५/२	गुलाव	गुलाब
८०	२/१	दण	दल
,,	३/३	विस्व	विश्व
८१	६/१	टुकरा	ठुकरा
,,	६/४	मीटकर	पीटकर
८२	४/३	धाहरे	धौहरे
८३	२/१	चहते	चाहते
,,	६/२	राम चन्दर	रामचन्दर
८४	३/२	जी	जो

मिलने का पता :—

लाजपति पिंगल,
पूर्णानन्दपेटा,
बेजवाडा. (कृष्णा)

मुद्रक : ऐ. जि. प्रेस, गान्धीनगर, बेजवाडा.